Registration No. V-36244/2008-09 **ISSN :- 2350-0611**

The journal has been listed in 'UGC Approved List of Journals' with Journal No. – 48441 in previous list of UGC

JIFE Impact Factor – 7.23

Research Highlights

A Multidisciplinary Quarterly International Peer Reviewed Referred Research Journal

Editor
Dr. Kamlesh Kumar Singh
Assistant Professor
Department of Sociology
Pt. D.D.U. Govt. Girls P.G. College
Sevapuri, Varanasi

Volume - XIII **No. - 1** **(Jan. – Mar. 2026)**

(Part – VIII)

Published by
Future Fact Society
Varanasi (U.P.) India

Research Highlights - *A Referred Journal, Published by : Quarterly*

Correspondence Address :
C 4/270, Chetganj
Varanasi, (U.P.)
Pin. - 221 010
Mobile No. :- 09336924396
Email- researchhighlights1@gmail.com

Note :-

The views expressed in the journal "Research Highlights" are not necessarily the views of editorial board or publisher. Neither any member of the editorial board nor publisher can in anyway be held responsible for the views and authenticity of the articles, reports or research findings. All disputes are subject to Varanasi (Uttar Pradesh) Jurisdiction only.

Managing Editor
Avinash Kumar Gupta

©Publisher

ISSN : 2350-0611

Printed by
Interface Computer, B 31/13-6, Malviya Kunj, Lanka, Varanasi-221005 (U.P.)

ADVISORY BOARD

- **Prof. T. N. Singh,** United Nations Professor of Plant Physiology, Department of Plant Sciences, University of Gondar, Ethiopia (Africa)
- **Prof. S.K. Bhatnagar,** School for Legal Studies, BBAU, Lucknow
- **Prof. (Dr.) Munna Singh**, Head of Department, Physical Education and Sports Sciences Department, Handia P.G. College, Handia, Prayagraj, U.P.
- **Dr Achchhe Lal Yadav**, Assistant Professor, Physical Education, Pt. D. D. U. Government Degree College, Saidpur, Ghazipur
- **Dr. Pramod Rao,** Assistant Professor, Department of Hindi, VBS Purvanchal University, Jaunpur
- **Dr. Anil Pratap Giri,** Assistant Professor, Department of Sanskrit, Pondicherry Central University, Pondicherry.

ଔ

EDITORIAL BOARD

- **Dr. Sanjay Singh,** Department of Plant Science, University of Gondar, Ethiopia (Africa)
- **Dr. Diwakar Pradhan,** Professor in Nepali, Head, Deptt. of Indian Languages Faculty of Arts, Banaras Hindu University, Varanasi
- **Dr. Shailendra Singh,** Professor and Head, Department of Sociology, J.S. University, Sikohabad, U.P.
- **Dr. Manish Arora,** Associate Professor, Faculty of Visual Arts, Banaras Hindu University, Varanasi
- **Dr. Surjoday Bhattacharya,** Assistant Professor, Government Degree College, Pratapgarh U P
- **Dr. Upasana Ray,** Associate Professor, National Council of Educational Research and Training, New Delhi
- **Dr. Krishna Kant Tripathi,** Assistant Professor, Deptt. of Education, Central University of Mijoram, Mijoram
- **Dr. Urjaswita Singh,** Assistant Professor, Department of Economics, M.G. Kashi Vidyapith, Varanasi.
- **Dr. Satyapal Yadav,** Assistant Professor, Department of History, Banaras Hindu University, Varanasi.
- **Dr. Brajesh Kumar Prasad,** Assistant Professor, Department of History, Banaras Hindu University, Varanasi.
- **Dr. Dewendra Pratap Tiwari,** Assistant Professor, Department of Political Science, Shree Lakshmi Kishori Mahavidyalaya (A Constituent Unit of BRA Bihar University, Muzaffarpur), Bihar

- **Dr. Hena Hussain,** Assistant Professor, Department of Psychology, Oriental College, Patna City (A Constituent Unit of Patliputra University, Patna), Bihar
- **Dr. Santosh Kumar Singh,** Assistant Professor, P.G. Department of Psychology, J.P. University. Chapra
- **Dr. Ramkirti Singh,** Assistant Professor, Department of Psychology, Gorakhpur University, Gorakhpur
- **Dr. Girish Kumar Tiwari,** Assistant Professor, National Council of Educational Research and Training, New Delhi
- **Dr. Vaibhav Kaithvas,** Assistant Professor, Department of Performing Art, Eklavya University, Sagar Road, Damoh, MP
- **Dr. Ranjeet Kumar Ranjan,** Assistant Professor, Department of Psychology, J.P. College, Narayanpur, Bihar
- **Dr. Paromita Chaubey,** Faculty of Education, Banaras Hindu University, Varanasi

EDITOR'S NOTE

It is a great honour to me to extend my warm greetings and welcome you all to the journal, **Research Highlights,** a refereed journal of multi disciplinary research. The journal, which is a peer-reviewed, will devote to the promotion of multi-disciplinary research and explorations to the South Asian and global community. It is our objective to provide a platform for the publication of new scholarly articles in the rapidly growing field of various disciplines. We are trying to encourage new research scholars and post graduate students by publishing their papers so that they may learn and participate in literary publishing through a professional internship. Scholarly and unpublished research articles, essays and interviews are invited from scholars, faculty researchers, writers, professors from all over the world.

Note: All outlook and perspectives articulated and revealed in our peer refereed journal are individual responsibility of the author concerned. Neither the editors nor publisher can be held responsible for them anyhow. Plagiarism will not be allowed at any level. All disputes are subject to Varanasi (Uttar Pradesh) Jurisdiction only.

Hoping all of you shall enjoy our endeavors and those of our contributors.

Editor

CONTENTS

"Research Highlights"

➲	तबला वाद्य का विकास क्रम, स्वरूप, बनावट एवं वर्ण विधि : एक विहंगावलोकन ***प्रद्युम्न शर्मा***	01-05
➲	स्वामी विवेकानंद के शैक्षिक विचार : दिव्यता के प्रकटीकरण की अवधारणा ***सुबोध कुमार पासवान***	06-12
➲	भारतीय मुस्लिम समाज में आधुनिकीकरण का प्रभाव – एक समाजशास्त्रीय अध्ययन ***डॉ. स्वाती त्रिपाठी***	13-16
➲	निर्गुण और सूफी सहभाव के कवि : कबीर ***तथादि***	17-21
➲	वस्तु एवं सेवा कर (GST) और समावेशी विकासः रोजगार और कल्याण के निहितार्थ ***श्री शशांक वर्मा***	22-28
➲	मिजोरम का सामाजिक–राजनीतिक परिदृश्यः नृजातीय पहचान से लोकतांत्रिक भागीदारी तक ***हिमांशु द्विवेदी*** ***अंशू पाण्डेय***	29-34
➲	निराला के काव्य में प्रगतिवादी चेतना ***सरोजा मौर्या*** ***प्रो. रामकृष्ण गौतम***	35-38
➲	प्राचीन काल में गंगा घाटी क्षेत्र में स्त्री शिक्षा ***ऋचा चौधरी*** ***डॉ. अंजना वर्मा***	39-43
➲	जवाहरलाल नेहरू के राजनीतिक विचार वर्तमान संदर्भ में : एक अध्ययन ***डॉ. रत्ना कुमारी***	44-46
➲	महामान बौद्ध दर्शन में तत्वमीमांसा ***नागेन्द्र सिंह*** ***डॉ. प्रीतम कुमार***	47-49
➲	सोशल मीडिया का युवाओं के मानसिक स्वास्थ्य पर प्रभावः एक मनोवैज्ञानिक अध्ययन ***सुमित सिंह***	50-57

तबला वाद्य का विकास क्रम, स्वरूप, बनावट एवं वर्ण विधि : एक विहंगावलोकन

प्रद्युम्न शर्मा*

शोध सारांश-

प्रस्तुत शोध आलेख में भारतीय संगीत परंपरा के प्रमुख अवनद्ध वाद्य **तबले के विकास क्रम, स्वरूप, बनावट एवं वर्ण विधि** का विस्तृत अध्ययन किया गया है। तबला हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत का एक अत्यंत महत्वपूर्ण और लोकप्रिय ताल वाद्य है, जिसने समय के साथ अपनी विशिष्ट पहचान स्थापित की है। इस शोध में तबले की उत्पत्ति एवं विकास से संबंधित विभिन्न मतों का अध्ययन करते हुए यह स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि इसके आविष्कार के संबंध में विद्वानों के मतों में भिन्नता पाई जाती है। अमीर खुसरो से संबंधित मान्यता, 'तबल' शब्द की उत्पत्ति तथा मध्यकालीन संगीत परंपराओं के प्रभावों का भी विश्लेषण किया गया है।

शोध में यह बताया गया है कि मध्यकालीन भारत की सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों ने भारतीय संगीत के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। पखावज से भिन्न और ख्याल गायन शैली के अनुकूल एक ऐसे ताल वाद्य की आवश्यकता के परिणामस्वरूप तबले का विकास हुआ। समय के साथ तबले ने दिल्ली सहित विभिन्न घरानों की वादन परंपराओं के माध्यम से अपनी विशिष्ट शैली विकसित की।

इस आलेख में तबले के स्वरूप और संरचना का भी अध्ययन किया गया है। तबला मुख्य रूप से दो भागों—दायाँ तबला और बायाँ डग्गा—से मिलकर बना होता है, जिन्हें संयुक्त रूप से तबला कहा जाता है। इसके विभिन्न अंगों जैसे पूड़ी, चाँटी, स्याही, गजरा, बद्धी, गट्टा आदि की संरचना एवं उपयोगिता का वर्णन किया गया है। साथ ही तबले पर प्रयुक्त विभिन्न वर्णों (बोलों) जैसे ता, तिं, ति/ते, गे, के आदि की वादन विधि का भी अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। इस प्रकार शोध आलेख में तबले को केवल एक ताल वाद्य के रूप में नहीं, बल्कि भारतीय संगीत की समृद्ध सांस्कृतिक धरोहर के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

शब्द कुंजी- तबला वाद्य, हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत, अवनद्ध वाद्य, तबले की बनावट एवं संरचना, तबला वर्ण विधि (बोल)।

"भारतीय संगीत में तबले की उत्पत्ति और विकास की प्रक्रिया के संदर्भ में तबल शब्द का प्रचलन चैदहवीं शताब्दी के आसपास हुआ क्योंकि संगीत रत्नाकर ग्रन्थ 13वीं शताब्दी के अन्तर्गत लिखा गया जिसमें तबला शब्द का प्रयोग युद्ध अथवा उत्सव में बजाये जाने वाले उध्र्वमुखी अवनद्ध वाद्यों के लिए किया जाता था, परन्तु समय के अन्तराल के बाद दो नग के जोड़ी वाले तबला शब्द के प्रयोग में आते है। "पखावज काटा तब बोला" मुहावरे का 'तब बोला' शब्दद्वय की परिणति तबला है।[1]"

आज हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत में तबले का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण और विशिष्ट है। अन्य सभी अवनद्ध वाद्यों की तुलना में तबला भारतीय संगीत जगत में सबसे अधिक लोकप्रिय एवं प्रचलित ताल वाद्य माना जाता है। इसकी उत्पत्ति और विकास के संबंध में विद्वानों के विभिन्न मत मिलते हैं, किंतु यह निर्विवाद है कि समय के साथ तबले ने भारतीय संगीत में अपनी एक अलग पहचान और प्रतिष्ठा स्थापित की है। तबले की विशेष बनावट और आकृति इसे अन्य अवनद्ध वाद्यों से भिन्न बनाती है। इसके दोनों भागों (दायाँ और बायाँ) को यदि ऊर्ध्वमुखी स्थिति में रखा जाए तो इसकी संरचना अन्य वाद्यों से अलग दिखाई देती है। आधुनिक युग में तबला सर्वाधिक प्रतिष्ठित, लोकप्रिय और व्यापक रूप से प्रयोग किया जाने वाला वाद्य है।

तबले के आविष्कार और उत्पत्ति के संबंध में निश्चित प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं। इस विषय पर संगीत विद्वानों के अलग-अलग मत हैं तथा अनेक प्राचीन ग्रंथों और मान्यताओं में इसके संदर्भ प्राप्त होते हैं। भारतीय संस्कृति में अरबी, फारसी और उर्दू भाषाओं के प्रभाव के बाद 'तबल' शब्द का प्रयोग प्रचलन में आया। मुस्लिम शासकों और यात्रियों के आगमन के साथ यह शब्द भारतीय समाज में लोकप्रिय हुआ। यद्यपि अरब, फारस और तुर्की आदि देशों में भी 'तबल' शब्द का प्रयोग वाद्यों के लिए किया जाता था, परंतु उनका स्वरूप भारतीय तबले के समान नहीं था। यह भी उल्लेखनीय है कि अमीर खुसरो के समय के लगभग 300 वर्ष बाद तक 'तबल' शब्द का प्रयोग युद्ध में बजाए जाने वाले नगाड़े या ढोल के अर्थ में किया जाता रहा। इसके प्रमाण बाद के साहित्यिक ग्रंथों में भी मिलते हैं। सिक्खों के पवित्र ग्रंथ श्री गुरु ग्रंथ साहिब (1469–1538 ई.) तथा सूफी कवि मलिक मुहम्मद जायसी की रचना पद्मावत में 'तबल' शब्द

* अतिथि व्याख्याता, सिक्किम यूनिवर्सिटी, गैंगटोक
ईमेल– pradhyumnkumar**1997**@gmail.com

का उल्लेख मिलता है। 15वीं शताब्दी में गुरु नानक देव जी ने अपने एक शब्द में 'तबल बाज बीचार सबदि सुणाहया' का प्रयोग किया है। 'सूफी कवि मलिक मुहम्मद जायसी ने सोलहवीं शताब्दी में पद्मावत में 'तबल' का उल्लेख निम्न चैपाइयों में किया है। यथा-

"बाजे तबल, अकूल जुझाऊ।।
चढ़ा कोपि सब राजा राऊ।।

एक अन्य स्थान पर पुनः यह शब्द आया है-

असुदल गजदल दूनौ साजै।
औ घन तबल जूझ कहै बाजै।।[2]"

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि अमीर खुसरो द्वारा 13वीं शताब्दी में तबले के आविष्कार की धारणा ऐतिहासिक प्रमाणों के आधार पर पूर्णतः स्वीकार्य नहीं है। अमीर खुसरो से संबंधित एक अन्य मत भी प्रचलित है, जिसके अनुसार 18वीं शताब्दी के अमीर खुसरो द्वितीय, जो स्वयं एक कुशल वीणा (बीन) वादक थे, को तबले के आविष्कार का श्रेय दिया जाता है। इन्हें 'खुसरो खाँ' के नाम से भी जाना जाता था। हालांकि इस मत के समर्थन में भी स्पष्ट और प्रमाणिक ऐतिहासिक साक्ष्य सीमित हैं।

महान संगीत ग्रंथकार शारंगदेव के पश्चात मध्यकालीन भारत में राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों में अनेक परिवर्तन हुए। विभिन्न राजवंशों, संस्कृतियों और परंपराओं के आपसी संपर्क का भारतीय संगीत पर गहरा प्रभाव पड़ा। इन्हीं परिवर्तनों के परिणामस्वरूप भारतीय संगीत की दो प्रमुख धाराएँ विकसित हुईं—उत्तर भारतीय (हिन्दुस्तानी) संगीत और दक्षिण भारतीय (कर्नाटक) संगीत।

मध्यकालीन युग में वाद्य संगीत, गायन शैली और ताल परंपराओं में भी अनेक नवीन प्रयोग हुए। इन्हीं विकास प्रक्रियाओं के क्रम में तबले जैसे वाद्य का स्वरूप धीरे-धीरे विकसित हुआ और आगे चलकर यह हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत की एक महत्वपूर्ण पहचान बन गया।

"दक्षिण भारत में संस्कृत भाषा विधिवत्त प्रचलित रही परन्तु मुस्लिम शासन के प्रभाव के कारण हिन्दी, फारसी, उर्दू भाषाओं का अधिक प्रभाव रहा। इसीलिए दक्षिण भारतीय संगीत पर प्राचीन भारतीय संगीत, ताल एवं वाद्यों का प्रभुत्व बना रहा। जिससे दक्षिण भारत में संस्कृत के प्रभाव से मृदंग, या मुरज ने मृदंगम् नाम ही धारण किया।[3]"

तबले की उत्पत्ति और विकास का सम्बन्ध नाट्य शास्त्र में वर्णित स्वाति मुनि द्वारा निर्मित त्रि-पुष्कर वाद्य के विघटन से है ।

"त्रिपुष्कर वाद्य के सन्दर्भ में विस्तृत रूप से विचार करने पर यह स्पष्ट होता है कि कालांतर में भरत कालीन त्रिपुष्कर वाद्य के विघटन से मुख्यतः दो प्रकार के स्वतंत्र वाद्यों का विकास हुआ। जिनमें से एक प्रकार के वह अवनद्ध वाद्य जो कि लिटाकर बजाये जाने वाले द्विपार्श्वमुखी आंकिक से विकसित हुए और दूसरे प्रकार के अवनद्ध वाद्य, जो कि जिनका विकास दो हिस्सों में उर्ध्वक व आलिन्ग्यक से हुआ। पहले प्रकार के वाद्यों में पटह, पखावज...आदि है । दूसरे प्रकार अर्थात जोड़ी रूप में बजाये जाने वाले उर्ध्वमुखी वाद्यों में दुक्कड़, पंजाब की जोड़ी तथा तबला इत्यादि है"।[4]

कालांतर में उत्तर भारतीय संगीत परंपरा के विकास के साथ अनेक संगीताचार्य एवं कलाकार उत्तर भारत की ओर आए। कई विद्वान और कलाकार मुगल शासकों द्वारा विभिन्न राज्यों पर विजय प्राप्त करने के पश्चात उनके संरक्षण में दरबारों तक पहुँचे, जहाँ उन्हें राजाश्रय प्राप्त हुआ। इसी काल में संगीत की विभिन्न शैलियों और वाद्य परंपराओं में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए।

तबले के प्रचार-प्रसार का श्रेय एक महान कलाकार को भी जाता है जो दिल्ली घराने के प्रवर्तक उस्ताद सिद्धार खां थे उन्होंने बायें (डग्गे) पर आटे की पुलिका के स्थान पर पक्की स्याही लगाई और उसका वादन किया।

ऐसा माना जाता है कि तबले का प्रारंभिक विकास दिल्ली क्षेत्र से हुआ। उस समय भारतीय संगीत में मुख्य रूप से पखावज का प्रयोग किया जाता था, जो ध्रुपद शैली की गंभीर और प्रभावशाली प्रकृति के लिए अत्यंत उपयुक्त था। परंतु जब ख्याल गायन शैली का विकास हुआ, तब ऐसी संगति की आवश्यकता अनुभव की गई जो इस नई गायन शैली के अनुरूप हो। पखावज की ध्वनि अधिक गंभीर, भारी और गूंजपूर्ण होने के कारण वह ख्याल गायन की कोमल एवं सूक्ष्म अभिव्यक्ति के लिए उतनी उपयुक्त नहीं थी।

इसी आवश्यकता के परिणामस्वरूप एक ऐसे ताल वाद्य का विकास हुआ, जो ख्याल गायन के साथ सहज रूप से संगति कर सके। इस प्रकार तबले का उद्भव हुआ और धीरे-धीरे यह हिन्दुस्तानी संगीत परंपरा का एक प्रमुख वाद्य बन गया।

अवनद्ध वाद्यों की श्रेणी में तबले ने अपनी विशिष्ट पहचान स्थापित की। समय के साथ इसकी बनावट, वादन शैली और तकनीकों में निरंतर विकास होता गया। विभिन्न सांस्कृतिक परंपराओं और संगीत शैलियों के प्रभाव से तबला वादन अधिक समृद्ध और प्रभावशाली बनता गया। आज भी इसकी लोकप्रियता और उपयोगिता भारतीय संगीत जगत में स्पष्ट रूप से दिखाई देती है।

तबले का प्रयोग केवल शास्त्रीय गायन तक सीमित नहीं है, बल्कि शास्त्रीय वादन और नृत्य के साथ-साथ सुगम संगीत, भक्ति संगीत, लोक संगीत तथा रविन्द्र संगीत आदि क्षेत्रों में भी अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत में तबला आज एक अनिवार्य एवं प्रतिष्ठित ताल वाद्य के रूप में स्थापित है।

"Most frequently tabla is used to accompany classical instrumental, vocal and dance performances e.g. the sitar, sarod, sarangi; the vocal form khayal, the semi classical forms thumri, tappa, ghazal and kathak dance".[5]

तबले का स्वरुप एवं बनावट-

"The tabla is the most popular and widely used drum of North India. It consists of a right-hand drum dayan, also referred to as tabla, and the left-hand drum, the bayan".[6]

"The most well know 'Pot-like' drum is ofcourse the table, this is tyhically North indian & now made known throughout the world."[7]

तबला एक प्रमुख अवनद्ध वाद्य है, जिसका उत्तर भारतीय ताल वाद्यों में अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। इसकी विशिष्टता इसकी बहुआयामी ध्वनि में निहित है। तबले से कोमलता, मधुरता, गंभीरता, तीव्रता और चंचल गति जैसे विभिन्न भावों को सहज रूप से अभिव्यक्त किया जा सकता है। यही विशेषता इसे अन्य ताल वाद्यों से अलग और विशिष्ट बनाती है। भारतीय तबला केवल भारत की संगीत परंपरा तक सीमित नहीं है, बल्कि विश्व के अनेक देशों में भी इसकी उपयोगिता और लोकप्रियता स्थापित हो चुकी है। इसकी वादन शैली, विविध तालों की अभिव्यक्ति और सूक्ष्म ध्वनि नियंत्रण की क्षमता के कारण इसे एक अत्यंत प्रभावशाली और कलात्मक वाद्य माना जाता है। संगीत जगत में तबले को जो प्रतिष्ठा, सम्मान और व्यापक स्वीकार्यता प्राप्त हुई है, वह अन्य किसी लय वाद्य को प्राप्त नहीं हो सकी। एक वाद्य के रूप में तबले की महत्ता तथा तबला वादकों की कला और कौशल ने इसे भारतीय संगीत की अमूल्य धरोहर के रूप में स्थापित किया है।

The tabla is the most widely most percussion instruments in the north although the Pakhawaj is the most ancient of all Percussion instrument it has been not or less superseded by the Tabla. The Tabla constitutes a vital last of Indian music especially in the north, and no concert, either vocal or instrumental can take place without pair of tabla's.[8]

तबला मुख्य रूप से दो भागों से मिलकर बना होता है। दाहिने हाथ से बजाए जाने वाले भाग को दायाँ तबला या तबला कहा जाता है, जबकि बाएँ हाथ से बजाए जाने वाले बड़े भाग को बायाँ तबला या डग्गा कहा जाता है। ये दोनों भाग मिलकर तबला जोड़ी कहलाते हैं। दोनों भागों का आकार, बनावट और ध्वनि अलग-अलग होती है, किंतु एक साथ मिलकर ये ताल और लय की सुंदर अभिव्यक्ति करते हैं।

दायाँ तबला- दायाँ तबला सामान्यतः लकड़ी से निर्मित होता है। इसका बाहरी भाग लकड़ी का बना होता है, जबकि अंदर का भाग खोखला रखा जाता है, जिससे वाद्य में उचित अनुनाद (गूँज) उत्पन्न हो सके। दाएँ तबले के प्रमुख अंगों में पूड़ी, चाँटी, स्याही, गजरा, बद्धी, गट्टे, लव, गुड़री आदि शामिल हैं। प्रत्येक अंग का तबले की ध्वनि और वादन में विशेष महत्व होता है।

पूड़ी- तबले के ऊपरी भाग को पूड़ी कहा जाता है। यह चमड़े से निर्मित होती है और लकड़ी के खुले भाग पर चढ़ाई जाती है। इसे चमड़े की बनी हुई बद्धी (पट्टियों) द्वारा अच्छी तरह कसकर बाँधा जाता है। सामान्यतः पूड़ी के निर्माण में बकरे के चमड़े का प्रयोग किया जाता है। पूड़ी में चमड़े की तीन परतें होती हैं। इनमें पहली परत अपेक्षाकृत कठोर होती है, जबकि दूसरी और तीसरी परतें मुलायम होती हैं। इन तीनों परतों को एक साथ गजरे के माध्यम से मजबूती प्रदान की जाती है।

पूड़ी की ऊपरी और निचली परत के मध्य भाग का चमड़ा हटाया जाता है, जिससे बीच की परत सुरक्षित रहती है और वादन के समय उचित ध्वनि उत्पन्न होती है। नीचे की परत तबले के खुले भाग को ढककर सुरक्षा प्रदान करती है, जबकि ऊपरी किनारा वादन के विभिन्न बोलों को स्पष्ट रूप से उत्पन्न करने में सहायक होता है। इस प्रकार पूड़ी तबले का सबसे महत्वपूर्ण भाग है, जो इसकी ध्वनि, स्वर और वादन शैली को निर्धारित करती है।

"The drum-heads (puri) are made of goat skin. Overlapping these around the circumference on both dayan and bayan is the kinnara (edge)."[9]

चांटी - जो चमड़े की पट्टी पूड़ी के अन्दर की ओर गोलाकार में लगी रहती है, उसे चांटी कहते है।

स्याही- तबले के मुख पर मढ़ी हुई पूड़ी के बीचोबीच गोलाकार काला मसाला लगा रहता है, वही स्याही कहलाती है। इसे तैयार करने के लिए लोहचूर्ण कोयला, लेई, पका हुआ चावल आदि का प्रयोग किया जाता है।

"The paste patches on both the dayan bayan are called shyahi. These are applied to the drum-heads to eliminate undesirable overtones. Their composition is comprised of a combination of iron filings mixed with wheat flour and various other ingredients".[10] लेई से स्याही को एक परत जूड़ी पर जमा दी जाती है तब स्याही के थर एक के ऊपर लगाकर घर

एक के ऊपर लगाकर घोटते जाते है तब स्याही में गोल धारियाँ बनती है। यह ध्वनि को सुरीला बनाती है। स्याही के कारण ही तबले पर बोलों की आवाज़ स्पष्ट सुनाई देती है। स्याही से ही गूंज में वृद्धि होती है जिससे ऊँचे नीचे स्वर में ध्वनित किया जाता है।

लव - चांटी और स्याही के बीच के स्थान को लव कहते है। तिं वर्ण इसमें ही बजाया जाता है।

गजरा - पूड़ी के चारों और चमड़े द्वारा बनी हुई माला की तरह गोलाकार का जो हिस्सा होता है, उसे गजरा कहते है। इसमें 64 छिद्र व 16 घर होते है, जिससे बड़ी पूड़ी को कसा जाता है।

बद्धी - यह चमड़े की बारीक पट्टी होती है जिसके द्वारा पूड़ी को कसा जाता है।

गट्टा - यह लकड़ी के गोल आकार के तीन इन्च लम्बे आठ टुकड़े होते है जो बद्धी के नीचे होते है, इन्हीं द्वारा पूड़ी के स्वर को ऊँचा या नीचा किया जाता है। ये गिनती में आठ होते है।

गुडरी - यह चमड़े का बना हुआ गोल आकार का गजरा होता है जो लकड़ी के नीचे के हिस्से में लगा रहता है। इसके बीच से होकर बद्धी निकलती है और पूड़ी को कसती है।

बायां भाग - इसका ढांचा मिट्टी, पीतल, तांबा या स्टील आदि धातु से निर्मित होतें है। मिट्टी के डग्गे में गूँज बहुत होती है, लेकिन उसके टूटने का डर रहता है। आजकल बहुत से डग्गे धातुओं से बनाए जाते है। ये दाहिने भाग तबले के समान ही होते है। परन्तु उसमें दो तरह का अन्तर होता है, एक तो उसमें गट्टे नहीं लगे रहते, दूसरे इसकी ऊँचाई तबले से कुछ कम होती है। मुख व्यास 6 या 10 ईंच का होता है। और यह चैड़ाई में तबले से अधिक गोलाकार होता है।

तबला की वर्ण विधि- भिन्न-भिन्न वाद्यों पर भिन्न-भिन्न बोल बजाए जाते है। इसी प्रकार तबले पर भी कुछ बोल बजाए जाते है, इन्हें वर्ण कहा जाता है। मुख्य रूप से तबले के 10 वर्ण होते हैं जो इस प्रकार है-

1. दायें तबले (दायाँ) के वर्ण- इन 6 वर्णों को बजाने के लिए दाहिने हाथ की उंगलियों और हथेली का प्रयोग किया जाता है –

ना या ता : तर्जनी (index finger) उंगली से तबले की किनार (चांटी) पर प्रहार करके यह ध्वनि निकाली जाती है।

तिं: तर्जनी (index finger) उंगली से लव या मैदान पर आघात कर बजाया जाता है।

ति या ते : मध्यमा के साथ अनामिका और कनिष्ठा उंगली को एक साथ जोड़ कर तबले के स्याही पर आघात कर बजाया जाता है।

टे या रे : तर्जनी उंगली से तबले की स्याही पर बजाया जाता है।

तूं या तू : तर्जनी उंगली से स्याही के बीच में खुला आघात कर बजाया जाता है।

दीं, थुं : यह हाथ की सभी उंगलियों को जोड़कर स्याही के बीच खुला आघात करने पर बजता है।

2. बायें तबले (डग्गा) के वर्ण

बायें हाथ का प्रयोग बेस (bass) ध्वनियां निकालने के लिए डग्गे पर किया जाता है इसमें 2 स्वतंत्र वर्ण बजते हैं।

गे (Ge/Gha): बायें हाथ से डग्गे के मैदान पर उंगलियों (मध्यमा और तर्जनी) के अग्र भाग से आघात कर गुंजायमान (open) ध्वनि निकाली जाती है।

क (Ka) या कि (Ki): यह डग्गे पर बंद आघात (closed stroke) होता है, जिसमें बायें हाथ की पूरी हथेली को डग्गे के बीच में मारकर जैसी बंद आवाज निकाली जाती है।

3. संयुक्त वर्ण (दोनों हाथों का प्रयोग)

जब दायाँ और बायाँ दोनों तबले एक साथ बजते हैं, तब मुख्य रूप से 2 वर्ण निकलते हैं।

धा (Dha): यह सबसे महत्वपूर्ण संयुक्त वर्ण है। इसमें दायें हाथ से 'ना' या 'ता' (किनारे पर) और बायें हाथ से डग्गे पर 'गे' एक साथ बजाया जाता है।

धिं (Dhin): दायें हाथ से 'तिं या ती' (लव पर) और बायें हाथ से डग्गे पर 'गे' का एक साथ प्रयोग किया जाता है।

निष्कर्ष- अध्ययन के आधार पर यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि तबला भारतीय संगीत परंपरा का एक अत्यंत विकसित, प्रभावशाली और विशिष्ट ताल वाद्य है। इसकी उत्पत्ति के संबंध में अनेक मत प्रचलित होने के बावजूद यह निश्चित है कि तबले का विकास भारतीय संगीत की आवश्यकताओं और बदलती हुई गायन शैलियों के अनुरूप हुआ। पखावज की गंभीर और भारी ध्वनि की तुलना में तबले ने ख्याल, ठुमरी, ध्रुपद के बाद विकसित विभिन्न गायन शैलियों, वाद्य संगीत तथा नृत्य के साथ अधिक सहज संगति प्रदान की। यही कारण है कि तबला धीरे-धीरे हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत का अभिन्न अंग बन गया।

तबले की वैज्ञानिक बनावट, स्याही की विशेष संरचना, विभिन्न वर्णों की स्पष्टता और ध्वनि की विविधता इसे अन्य ताल वाद्यों से अलग स्थान प्रदान करती है। इसकी मधुरता, गंभीरता, तीव्रता और लयात्मक क्षमता के कारण यह भारत ही नहीं बल्कि विश्व

स्तर पर प्रसिद्ध हुआ है। अतः कहा जा सकता है कि तबला केवल एक वाद्य नहीं, बल्कि भारतीय संगीत की लय, परंपरा और कलात्मक अभिव्यक्ति का प्रतीक है। इसकी विकास यात्रा भारतीय संस्कृति, संगीत शैलियों और वादन परंपराओं के निरंतर परिवर्तन एवं समृद्धि को दर्शाती है।

सन्दर्भ सूची

गुप्ता, डॉ., चित्रा, भारतीय संगीत में ताल वाद्यों की उपयोगिता, पृ॰ 13
सक्सेना, डॉ., वसुधा, ताल के लक्ष्य-लक्षण स्वरूप में एकरूपता, पृ॰ 34
मिश्र, छोटेलाल, ताल प्रबन्ध, पृ॰ 5
शुक्ल,डॉ., योगमाया, तबले का उद्गम विकास और वादन शैलियाँ, पृ०114
Gottlies, S., Robert, Solo Tabla Drumming of North India (Preface).
ibid., Pg. 10.
देव, डॉ., वी. सी. इन्डियन म्यूजिक, पृ.111
1 S. Krishna Swami, Musical Instruments of India, p. 43.
Gottlies, S. Robert, Solo Tabla Drumming of North India, Pg. 15.
Ibid, Pg. 15.

स्वामी विवेकानंद के शैक्षिक विचार : दिव्यता के प्रकटीकरण की अवधारणा

सुबोध कुमार पासवान*

सारांश

स्वामी विवेकानंद की शैक्षिक विचारधारा भारतीय शिक्षा दर्शन में एक युगान्तकारी योगदान है। उन्होंने शिक्षा को केवल बाहरी ज्ञान का संग्रह या रोजगार-उन्मुख प्रशिक्षण नहीं माना, बल्कि इसे "मनुष्य के भीतर पहले से विद्यमान पूर्णता के प्रकटीकरण" की प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया। यह लेख विवेकानंद के शैक्षिक दर्शन की दार्शनिक आधारभूमि, दिव्यता के प्रकटीकरण की अवधारणा, मनुष्य-निर्माण शिक्षा की प्रक्रिया तथा समसामयिक भारतीय शिक्षा प्रणाली में इसकी प्रासंगिकता का विस्तृत विश्लेषण प्रस्तुत करता है।

विवेकानंद का दृढ़ विश्वास था कि प्रत्येक व्यक्ति में दिव्यता निहित है। शिक्षा का मुख्य उद्देश्य इसी आंतरिक दिव्यता को जागृत करना, विकसित करना और प्रकट करना है। उन्होंने ब्रिटिश औपनिवेशिक शिक्षा व्यवस्था को कड़ी आलोचना करते हुए कहा कि वह विद्यार्थियों को केवल क्लर्क बनाने वाली मशीनी प्रणाली है, जो चरित्र, साहस, आत्मविश्वास और आध्यात्मिक विकास की उपेक्षा करती है। उनके अनुसार सच्ची शिक्षा शरीर, मन और आत्मा के समग्र विकास पर आधारित होनी चाहिए।

यह विचारधारा अद्वैत वेदांत पर आधारित है, जिसमें ज्ञान को बाह्य स्रोत से प्राप्त करने के बजाय आंतरिक जागरण पर बल दिया गया है। विवेकानंद ने मनुष्य-निर्माण शिक्षा की अवधारणा दी, जिसमें चरित्र निर्माण, एकाग्रता, योग, शारीरिक विकास और सेवा-भाव का समावेश है। उन्होंने स्त्री शिक्षा, जन-शिक्षा और पूर्व-पश्चिम के समन्वय पर भी विशेष जोर दिया।

वर्तमान समय में जब भारतीय शिक्षा प्रणाली परीक्षा-उन्मुख, प्रतिस्पर्धी और मूल्यहीनता की समस्या से जूझ रही है, विवेकानंद के विचार अत्यंत प्रासंगिक हैं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में भी उनके दर्शन की झलक दिखाई देती है। यह लेख उनके विचारों को ऐतिहासिक संदर्भ, प्रमुख सिद्धांतों तथा आज के शिक्षा संकट — जैसे मानसिक स्वास्थ्य, नैतिक ह्रास और कौशल-असंतुलन — के समाधान के रूप में प्रस्तुत करता है।

मुख्य शब्द: स्वामी विवेकानंद, दिव्यता का प्रकटीकरण, मनुष्य-निर्माण शिक्षा, वेदांत शिक्षा दर्शन, चरित्र निर्माण, समन्वित शिक्षा, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020

प्रस्तावना

भारतीय शिक्षा का इतिहास आध्यात्मिक जागरण, नैतिक विकास और चरित्र निर्माण की समृद्ध परंपरा से ओत-प्रोत है। प्राचीन काल से ही भारत में शिक्षा को मात्र अक्षर ज्ञान या व्यावसायिक कौशल तक सीमित नहीं माना जाता था, बल्कि इसे आत्म-विकास और दिव्यता के प्रकटीकरण का साधन समझा जाता था। किंतु 19वीं शताब्दी के अंतिम चरण में ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के अधीन भारतीय शिक्षा प्रणाली पूरी तरह बदल गई। अंग्रेजी शिक्षा व्यवस्था का मुख्य उद्देश्य भारतीय युवाओं को नौकरशाह, क्लर्क और अंग्रेजी राज की सेवा करने वाले आज्ञाकारी कर्मचारी तैयार करना था। इस मशीनी और यांत्रिक शिक्षा पद्धति ने विद्यार्थियों के चरित्र, साहस, आत्मविश्वास तथा आध्यात्मिक विकास को पूरी तरह उपेक्षित कर दिया।

इसी कठिन समय में स्वामी विवेकानंद ने भारतीय शिक्षा दर्शन में एक नई क्रांतिकारी दृष्टि प्रस्तुत की। रामकृष्ण परमहंस के प्रमुख शिष्य स्वामी विवेकानंद ने शिक्षा को पुनः उसकी मूल भावना से जोड़ा। उन्होंने शिक्षा की विश्व प्रसिद्ध परिभाषा दी — **"Education is the manifestation of the perfection already in man."** अर्थात् शिक्षा मनुष्य के भीतर पहले से विद्यमान पूर्णता का प्रकटीकरण है।

विवेकानंद के अनुसार शिक्षा बाहरी ज्ञान का संग्रह मात्र नहीं है, बल्कि आंतरिक दिव्यता, शक्ति और पूर्णता को जागृत करने तथा विकसित करने की प्रक्रिया है। उन्होंने ब्रिटिश शिक्षा व्यवस्था की कड़ी आलोचना करते हुए

* शोधार्थी, विश्वविद्यालय दर्शन एवं शिक्षा शास्त्र विभाग, बी० आर० ए० बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर
E-mail- subodhkrpaswan@gmail.com

कहा कि वह विद्यार्थियों को स्वतंत्र चिंतन, नैतिक बल और राष्ट्रप्रेम से वंचित करती है। उनके शैक्षिक विचार अद्वैत वेदांत दर्शन पर आधारित थे, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को दिव्य मानते हुए शिक्षा को शरीर, मन और आत्मा के समग्र विकास का माध्यम बनाया गया।

विवेकानंद का शैक्षिक दर्शन केवल व्यक्तिगत विकास तक सीमित नहीं था, बल्कि यह राष्ट्र-निर्माण, सामाजिक उत्थान, स्त्री शिक्षा और जन-जागरण का महत्वपूर्ण साधन था। उन्होंने कहा कि सच्ची शिक्षा मनुष्य को आत्मनिर्भर, साहसी, चरित्रवान और सेवा-भाव से युक्त बनाती है।

यह लेख स्वामी विवेकानंद के शैक्षिक विचारों की दार्शनिक नींव, दिव्यता के प्रकटीकरण की अवधारणा, मनुष्य-निर्माण शिक्षा की प्रक्रिया, प्रमुख कारणों, प्रभावों तथा 21वीं शताब्दी के भारतीय शिक्षा संदर्भ — विशेषकर राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 — में इसकी प्रासंगिकता का विस्तृत विश्लेषण करता है। यह अध्ययन विवेकानंद के विचारों को मात्र ऐतिहासिक महत्व तक सीमित न रखते हुए, समसामयिक शिक्षा चुनौतियों जैसे परीक्षा-उन्मुखीकरण, मूल्यहीनता, मानसिक स्वास्थ्य संकट और कौशल-असंतुलन के समाधान के रूप में भी प्रस्तुत करता है।

साहित्य समीक्षा

विवेकानंद, स्वामी (1989). *स्वामी विवेकानंद की सम्पूर्ण रचनाएँ* (खंड 1-9). अद्वैत आश्रम. स्वामी विवेकानंद की पुस्तक *स्वामी विवेकानंद की सम्पूर्ण रचनाएँ* (1989) उनके शैक्षिक विचारों का मूल और सबसे महत्वपूर्ण प्राथमिक स्रोत है। इस नौ खंडों वाले संग्रह में उनके भाषण, पत्र, लेख और वार्तालापों में शिक्षा संबंधी विचार विस्तार से उपलब्ध हैं। विवेकानंद ने शिक्षा को "मनुष्य के भीतर पहले से विद्यमान पूर्णता का प्रकटीकरण" की अवधारणा दी है। उन्होंने मनुष्य निर्माण शिक्षा, चरित्र निर्माण, स्त्री शिक्षा, पूर्व-पश्चिम समन्वय तथा व्यावहारिक शिक्षा पर गहन प्रकाश डाला है। यह संग्रह उनके दर्शन की प्रामाणिकता और गहराई को समझने के लिए अनिवार्य है। इसमें ब्रिटिश शिक्षा प्रणाली की आलोचना और भारतीय शिक्षा को पुनर्जीवित करने का आह्वान स्पष्ट रूप से व्यक्त हुआ है। यह कृति शोधकर्ताओं के लिए आधारभूत दस्तावेज है।

राधाकृष्णन, एस. (1952). *भारतीय दर्शन* (खंड 1-2). जॉर्ज एलन एंड अनविन. राधाकृष्णन (1952) ने अपनी कृति *भारतीय दर्शन* में स्वामी विवेकानंद को आधुनिक युग का प्रमुख वेदांती विचारक माना है। उन्होंने विवेकानंद के शैक्षिक दर्शन को अद्वैत वेदांत दर्शन से जोड़कर विश्लेषित किया है। राधाकृष्णन के अनुसार विवेकानंद ने शिक्षा को धार्मिक और आध्यात्मिक विकास का साधन बनाया, जिसमें ज्ञान को आंतरिक जागरण के रूप में देखा गया। उन्होंने विवेकानंद के विचारों का पाश्चात्य दर्शन के साथ तुलनात्मक अध्ययन भी किया है। यह ग्रंथ विवेकानंद के दर्शन को दार्शनिक परिप्रेक्ष्य में समझने के लिए अत्यंत उपयोगी है और उनके शैक्षिक विचारों को भारतीय दर्शन की निरंतरता के रूप में स्थापित करता है।

मुखर्जी, एच. (1973). *स्वामी विवेकानंद और शिक्षा.* फर्मा केएलएम प्राइवेट लिमिटेड. मुखर्जी (1973) की पुस्तक *स्वामी विवेकानंद और शिक्षा* विवेकानंद के शैक्षिक दर्शन का सबसे विस्तृत और विश्लेषणात्मक अध्ययन है। लेखक ने विवेकानंद की शिक्षा संबंधी प्रमुख अवधारणाओं — दिव्यता का प्रकटीकरण, मनुष्य निर्माण, शारीरिक-मानसिक-आध्यात्मिक संतुलन तथा राष्ट्रीय शिक्षा — पर विस्तार से चर्चा की है। मुखर्जी ने ब्रिटिश औपनिवेशिक शिक्षा और विवेकानंद के क्रांतिकारी विचारों के बीच तुलना भी की है। यह ग्रंथ शोधकर्ताओं के लिए विवेकानंद की शैक्षिक विचारधारा को समझने का एक उत्कृष्ट माध्यम है।

चंद्रा, सतीश (2018). *स्वामी विवेकानंद और भारतीय शिक्षा.* राष्ट्रीय पुस्तक न्यास. चंद्रा (2018) ने अपनी पुस्तक *स्वामी विवेकानंद और भारतीय शिक्षा* में विवेकानंद के शैक्षिक विचारों को औपनिवेशिक शिक्षा व्यवस्था के विरुद्ध एक सशक्त प्रतिरोध के रूप में प्रस्तुत किया है। लेखक ने विस्तार से बताया है कि विवेकानंद ने मशीनी शिक्षा की आलोचना की और मनुष्य निर्माण तथा चरित्र निर्माण पर आधारित शिक्षा प्रणाली की वकालत की। पुस्तक में स्त्री शिक्षा, जन शिक्षा और व्यावहारिक शिक्षा पर उनके योगदान को विशेष रूप से रेखांकित किया गया है। यह आधुनिक संदर्भ में विवेकानंद के विचारों की प्रासंगिकता को समझने के लिए महत्वपूर्ण है।

शर्मा, रामनाथ (2008). *स्वामी विवेकानंद का दर्शन.* विनोद पुस्तक मंदिर. शर्मा (2008) ने *स्वामी विवेकानंद का दर्शन* में विवेकानंद की "दिव्यता के प्रकटीकरण" की अवधारणा पर गहन चर्चा की है। लेखक ने शिक्षा को वेदांत दर्शन से जोड़ते हुए बताया कि विवेकानंद के अनुसार शिक्षा बाहरी ज्ञान नहीं, बल्कि आंतरिक पूर्णता का विकास है।

पुस्तक में चरित्र निर्माण, योग, एकाग्रता और सेवा भाव जैसे प्रमुख सिद्धांतों का विस्तृत विश्लेषण किया गया है। यह ग्रंथ विवेकानंद के शैक्षिक दर्शन को दार्शनिक और व्यावहारिक दोनों दृष्टियों से समझने में सहायक है।

विवेकानंद के शैक्षिक दर्शन की पृष्ठभूमि

स्वामी विवेकानंद का जन्म 12 जनवरी 1863 को कलकत्ता के एक कायस्थ परिवार में नरेन्द्रनाथ दत्त के रूप में हुआ था। उनके पिता विश्वनाथ दत्त एक प्रसिद्ध वकील थे और माता भुवनेश्वरी देवी धार्मिक स्वभाव की महिला थीं। बचपन से ही नरेन्द्रनाथ में तीव्र बौद्धिक जिज्ञासा, साहस और आध्यात्मिक खोज की प्रवृत्ति दिखाई देती थी। उन्होंने प्रेसिडेंसी कॉलेज और स्कॉटिश चर्च कॉलेज से आधुनिक पाश्चात्य शिक्षा प्राप्त की, जिसमें दर्शन, इतिहास, साहित्य और विज्ञान के विषय शामिल थे। इस दौरान उन्होंने हर्बर्ट स्पेंसर, जॉन स्टुअर्ट मिल और इमैनुअल कांट जैसे पाश्चात्य विचारकों का गहन अध्ययन किया।

किंतु पाश्चात्य शिक्षा से प्राप्त ज्ञान उन्हें पूर्ण संतोष नहीं दे सका। वे गहरी आध्यात्मिक खोज में लगे रहे। 1881 में रामकृष्ण परमहंस से उनकी भेंट हुई, जो उनके जीवन की दिशा बदलने वाली घटना साबित हुई। रामकृष्ण परमहंस के शिष्य बनकर विवेकानंद ने अद्वैत वेदांत दर्शन की गहन समझ प्राप्त की। रामकृष्ण ने उन्हें सिखाया कि प्रत्येक मनुष्य में दिव्यता निहित है और सच्चा ज्ञान बाहरी नहीं, बल्कि आंतरिक जागरण से प्राप्त होता है। रामकृष्ण के निर्वाण के बाद विवेकानंद ने भारत भर में भ्रमण किया। उन्होंने गरीबी, अशिक्षा, सामाजिक कुरीतियों और ब्रिटिश शोषण को निकट से देखा।

ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के अधीन भारतीय शिक्षा प्रणाली को स्वामी विवेकानंद ने कड़ी आलोचना का विषय बनाया। उन्होंने इसे "मशीनी शिक्षा" की संज्ञा दी। उनके अनुसार यह प्रणाली विद्यार्थियों को केवल क्लर्क और नौकरशाह बनाने का माध्यम थी, जो आत्मविश्वास, चरित्र, साहस और आध्यात्मिक विकास की पूरी तरह उपेक्षा करती थी। ब्रिटिश शिक्षा भारतीय युवाओं को अपनी संस्कृति से अलग कर उन्हें अंग्रेजी मानसिकता वाला बनाती थी। विवेकानंद ने कहा कि यह शिक्षा ज्ञान की जगह सूचना का ढेर भर रही थी और विद्यार्थियों को स्वतंत्र चिंतन से वंचित कर रही थी।

इसी पृष्ठभूमि में विवेकानंद ने शैक्षिक दर्शन की नींव रखी। उन्होंने पाश्चात्य विज्ञान, प्रौद्योगिकी और भौतिक प्रगति को भारतीय आध्यात्मिकता, वेदांत और नैतिक मूल्यों के साथ समन्वित करने पर बल दिया। उनका मानना था कि सच्ची शिक्षा शरीर, मन और आत्मा के समग्र विकास पर आधारित होनी चाहिए। शिक्षा मात्र रोजगार का साधन नहीं, बल्कि मनुष्य निर्माण (Man-Making) का माध्यम है। उन्होंने शिक्षा को राष्ट्र-निर्माण और सामाजिक उत्थान का सबसे शक्तिशाली साधन माना।

विवेकानंद के शैक्षिक विचार 1893 के शिकागो धर्म संसद में दिए गए भाषण के बाद विश्व स्तर पर चर्चित हुए। उन्होंने विश्व को भारतीय दर्शन की महानता से परिचित कराया और भारत को शिक्षा के क्षेत्र में नई दिशा देने का संकल्प लिया। रामकृष्ण मिशन की स्थापना के माध्यम से उन्होंने इन विचारों को व्यावहारिक रूप भी दिया।

इस प्रकार विवेकानंद के शैक्षिक दर्शन की पृष्ठभूमि औपनिवेशिक शोषण, सांस्कृतिक संकट, आध्यात्मिक जागरण और राष्ट्रप्रेम की भावना से निर्मित हुई। उनका दर्शन आज भी भारतीय शिक्षा प्रणाली को सही दिशा देने में प्रासंगिक है।

दिव्यता के प्रकटीकरण की अवधारणा

स्वामी विवेकानंद के शैक्षिक दर्शन का मूल आधार यह है कि प्रत्येक मनुष्य में दिव्यता निहित है। शिक्षा का मुख्य कार्य इस आंतरिक दिव्यता को जागृत करना, विकसित करना और प्रकट करना है। उन्होंने शिक्षा की विश्व प्रसिद्ध परिभाषा दी — "Education is the manifestation of the perfection already in man" अर्थात् शिक्षा मनुष्य के भीतर पहले से विद्यमान पूर्णता का प्रकटीकरण है।

विवेकानंद का दृढ़ विश्वास था कि सारा ज्ञान मनुष्य के भीतर ही छिपा हुआ है। शिक्षक का कार्य ज्ञान का भंडार बनना नहीं, बल्कि विद्यार्थी के मार्ग में आने वाली बाधाओं को दूर करना है। उन्होंने कहा, "सभी ज्ञान मनुष्य के भीतर है, शिक्षक केवल बाधाओं को दूर करता है।" शिक्षा बाहरी ज्ञान थोपने की प्रक्रिया नहीं है, बल्कि आंतरिक प्रकाश को जागृत करने, आत्मशक्ति को विकसित करने और छिपी हुई क्षमताओं को बाहर लाने की प्रक्रिया है।

यह अवधारणा अद्वैत वेदांत दर्शन पर आधारित है। अद्वैत वेदांत के अनुसार आत्मा और परमात्मा में कोई भेद नहीं है। प्रत्येक जीव दिव्य है, केवल अज्ञान के आवरण ने इसे ढक रखा है। शिक्षा इसी आवरण को हटाने का

साधन है। विवेकानंद ने जोर देकर कहा कि मनुष्य को पशु से ऊपर उठाकर दिव्य बनाने का सबसे बड़ा माध्यम शिक्षा ही है।

उन्होंने शिक्षा को केवल बौद्धिक विकास तक सीमित नहीं रखा। उनके अनुसार सच्ची शिक्षा शरीर, मन और आत्मा के समन्वित विकास से होकर गुजरती है। जब विद्यार्थी अपनी आंतरिक दिव्यता को पहचान लेता है, तब वह आत्मनिर्भर, साहसी, चरित्रवान और सेवा-भाव से युक्त बन जाता है।

दिव्यता के प्रकटीकरण की यह अवधारणा ब्रिटिश मशीनी शिक्षा पद्धति के विरुद्ध एक क्रांतिकारी विचार थी। यह आज भी भारतीय शिक्षा प्रणाली के लिए प्रेरणास्रोत है, खासकर जब शिक्षा को केवल डिग्री और नौकरी तक सीमित कर दिया गया है। विवेकानंद के अनुसार शिक्षा का अंतिम लक्ष्य मनुष्य को अपने वास्तविक स्वरूप — जो दिव्य है — से परिचित कराना है।

शैक्षिक विचारों के प्रमुख कारण

औपनिवेशिक शिक्षा की आलोचना- स्वामी विवेकानंद ने ब्रिटिश औपनिवेशिक शिक्षा प्रणाली की कड़ी आलोचना की। उन्होंने इसे "मशीनी शिक्षा" की संज्ञा दी। ब्रिटिश शासन का मुख्य उद्देश्य भारतीय युवाओं को केवल क्लर्क, नौकरशाह और अंग्रेजी राज की सेवा करने वाले आज्ञाकारी कर्मचारी तैयार करना था। इस प्रणाली में रट्टू मार्ग, परीक्षा-उन्मुखीकरण और अंग्रेजी भाषा पर अत्यधिक जोर दिया जाता था, जिससे विद्यार्थियों का स्वतंत्र चिंतन, रचनात्मकता और मौलिक विचार करने की क्षमता नष्ट हो रही थी। विवेकानंद ने कहा कि यह शिक्षा भारतीय विद्यार्थियों को अपनी संस्कृति, इतिहास और आध्यात्मिक विरासत से अलग कर रही थी। वे मानते थे कि ऐसी शिक्षा मनुष्य को जीवित मशीन बना देती है, न कि चरित्रवान और आत्मनिर्भर नागरिक। इसी आलोचना ने उनके शैक्षिक विचारों को जन्म दिया।

सामाजिक पिछड़ापन- 19वीं शताब्दी में भारतीय समाज अशिक्षा, अंधविश्वास, जातिवाद, छुआछूत और सामाजिक शोषण की गंभीर समस्याओं से ग्रस्त था। गरीब, दलित और ग्रामीण जनता शिक्षा से पूरी तरह वंचित थी। विवेकानंद ने इन सामाजिक कुरीतियों को भारत की पिछड़ापन का मुख्य कारण माना। उन्होंने देखा कि जनता की अशिक्षा के कारण जमींदार, महाजन और विदेशी शासक उनका शोषण कर रहे थे। इसलिए उन्होंने शिक्षा को सामाजिक उत्थान का सबसे प्रभावी साधन बताया। उनका मानना था कि शिक्षा के बिना सामाजिक न्याय, समानता और प्रगति संभव नहीं है। विशेष रूप से स्त्रियों, पिछड़े वर्गों और जनजातियों की शिक्षा पर उन्होंने विशेष बल दिया। उनके शैक्षिक विचार सामाजिक पिछड़ापन को दूर कर एक समृद्ध और न्यायपूर्ण समाज निर्माण की प्रेरणा से जन्मे।

आध्यात्मिक पुनर्जागरण- स्वामी विवेकानंद को रामकृष्ण परमहंस से गहन आध्यात्मिक प्रेरणा मिली। रामकृष्ण ने उन्हें सिखाया कि प्रत्येक व्यक्ति में दिव्यता है और सच्चा ज्ञान आंतरिक अनुभव से प्राप्त होता है। रामकृष्ण के निर्वाण के बाद विवेकानंद ने भारत के विभिन्न तीर्थों और स्थानों का भ्रमण किया, जहाँ उन्होंने जन-सामान्य की दयनीय स्थिति देखी। इस आध्यात्मिक जागरण ने उन्हें शिक्षा को केवल भौतिक ज्ञान तक सीमित न रखकर, उसे आध्यात्मिक विकास का साधन बनाने की प्रेरणा दी। उन्होंने वेदांत दर्शन को आधार बनाते हुए शिक्षा को दिव्यता के प्रकटीकरण का माध्यम बनाया। रामकृष्ण से प्राप्त यह आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि उनके सम्पूर्ण शैक्षिक दर्शन की नींव बनी।

राष्ट्रीय चेतना- विवेकानंद ने शिक्षा को राष्ट्र-निर्माण का सबसे शक्तिशाली हथियार माना। 19वीं शताब्दी में भारत ब्रिटिश गुलामी की जंजीरों में जकड़ा हुआ था। विवेकानंद चाहते थे कि शिक्षा के माध्यम से भारतीय युवा अपनी प्राचीन महानता को पहचानें और विश्व पटल पर भारत का गौरव पुनः स्थापित करें। उन्होंने कहा कि शिक्षा युवाओं में राष्ट्रप्रेम, आत्मसम्मान और बलिदान की भावना जगाए। शिक्षा का उद्देश्य केवल व्यक्तिगत उन्नति नहीं, बल्कि पूरे राष्ट्र का उत्थान होना चाहिए। उन्होंने पूर्व और पश्चिम के ज्ञान का समन्वय कर एक ऐसी शिक्षा प्रणाली की कल्पना की जो भारत को विश्व गुरु बनाने में सक्षम हो। यही राष्ट्रीय चेतना उनके शैक्षिक विचारों का एक प्रमुख कारण बनी।

प्रमुख सिद्धांत और अवधारणाएँ

दिव्यता का प्रकटीकरण — शिक्षा पूर्णता का विकास- स्वामी विवेकानंद के शैक्षिक दर्शन का सर्वाधिक महत्वपूर्ण सिद्धांत है — "दिव्यता का प्रकटीकरण"। उनका मानना था कि प्रत्येक मनुष्य में पहले से ही पूर्णता और दिव्यता विद्यमान है। शिक्षा का कार्य इस छिपी हुई दिव्यता को बाहर लाना और विकसित करना है। उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा कि शिक्षा बाहरी ज्ञान भरने की प्रक्रिया नहीं, बल्कि मनुष्य के भीतर निहित पूर्णता का प्रकटीकरण है। यह अवधारणा अद्वैत वेदांत पर आधारित है, जिसमें आत्मा को परमात्मा का अंश माना गया है। विवेकानंद के अनुसार

जब शिक्षा इस दिव्यता को जागृत करती है, तब मनुष्य अपनी वास्तविक क्षमता को पहचान लेता है और वह सच्चे अर्थों में महान बन जाता है।

मनुष्य-निर्माण शिक्षा — चरित्र, साहस और आत्मनिर्भरता का विकास- विवेकानंद ने "मनुष्य-निर्माण शिक्षा" (Man-Making Education) की अवधारणा दी, जो उनके शैक्षिक विचारों का केंद्र बिंदु है। वे कहते थे कि शिक्षा का उद्देश्य केवल डिग्री या नौकरी दिलाना नहीं, बल्कि चरित्रवान, साहसी और आत्मनिर्भर मनुष्य का निर्माण करना है। उन्होंने शिक्षा को "जीवन-निर्माण, मनुष्य-निर्माण और चरित्र-निर्माण" की प्रक्रिया बताया। उनके अनुसार शिक्षा विद्यार्थी में सत्य, शुद्धता, अहिंसा, साहस और सेवा-भाव जैसे गुणों का विकास करे। यह शिक्षा युवाओं को आत्मविश्वास से भर दे और उन्हें जीवन की चुनौतियों का सामना करने योग्य बनाए।

शरीर, मन और आत्मा का संतुलित विकास — शारीरिक व्यायाम, मानसिक एकाग्रता और आध्यात्मिक उन्नति- विवेकानंद ने शिक्षा को त्रि-आयामी प्रक्रिया माना — शरीर, मन और आत्मा का समन्वित विकास। उन्होंने जोर दिया कि स्वस्थ शरीर के बिना स्वस्थ मन और आत्मा का विकास संभव नहीं है। इसलिए शिक्षा में शारीरिक व्यायाम, खेलकूद और योग को अनिवार्य स्थान दिया जाना चाहिए। मानसिक विकास के लिए एकाग्रता, रचनात्मक चिंतन और वैज्ञानिक ज्ञान आवश्यक है, जबकि आध्यात्मिक उन्नति के लिए वेदांत, नैतिक शिक्षा और सेवा-भाव का समावेश जरूरी है। उन्होंने कहा कि सच्ची शिक्षा इन तीनों का सामंजस्य स्थापित करती है, जिससे पूर्ण व्यक्तित्व का विकास होता है।

एकाग्रता और योग — शिक्षा में राजयोग की तकनीकों का समावेश- विवेकानंद ने शिक्षा में योग और एकाग्रता को विशेष महत्व दिया। उन्होंने राजयोग की तकनीकों को शिक्षा का अभिन्न अंग बनाने की वकालत की। उनके अनुसार बिना एकाग्रता के कोई भी ज्ञान स्थायी नहीं रहता। उन्होंने कहा, "एकाग्रता ही सारी शक्ति का रहस्य है।" शिक्षा में ध्यान, प्राणायाम और योगाभ्यास को शामिल करके विद्यार्थियों की मानसिक शक्ति को बढ़ाया जा सकता है। यह सिद्धांत आधुनिक शिक्षा में मानसिक तनाव और एकाग्रता की कमी की समस्या का समाधान प्रस्तुत करता है।

शिक्षक की भूमिका — शिक्षक मार्गदर्शक और प्रेरक, न कि सजा देने वाला- विवेकानंद के अनुसार शिक्षक का कार्य ज्ञान बेचना नहीं, बल्कि विद्यार्थी का मार्गदर्शक, मित्र और प्रेरक बनना है। शिक्षक को विद्यार्थी के भीतर छिपी दिव्यता को जागृत करने वाला होना चाहिए। उन्होंने कहा कि शिक्षक स्वयं आदर्श चरित्र का उदाहरण हो। शिक्षक को विद्यार्थियों पर सजा या दबाव नहीं डालना चाहिए, बल्कि प्रेम, विश्वास और व्यक्तिगत संपर्क के माध्यम से उन्हें प्रेरित करना चाहिए। यह अवधारणा पारंपरिक गुरु-शिष्य संबंध को पुनर्जीवित करती है।

विवेकानंद के विचारों का विस्तार

स्वामी विवेकानंद ने शिक्षा को जीवन भर चलने वाली निरंतर प्रक्रिया माना। उनके अनुसार शिक्षा की समाप्ति कभी नहीं होती, यह जन्म से मृत्यु पर्यंत चलती रहती है। उन्होंने स्कूलों और शिक्षण संस्थानों में केवल पुस्तकीय ज्ञान पर जोर नहीं दिया, बल्कि खेलकूद, शारीरिक व्यायाम, योग, ध्यान, नैतिक शिक्षा और व्यावहारिक प्रशिक्षण को शिक्षा का अनिवार्य अंग बनाने की वकालत की। विवेकानंद का मानना था कि विद्यार्थी को सैद्धांतिक ज्ञान के साथ-साथ कृषि, उद्योग, कला-कौशल और तकनीकी शिक्षा भी प्राप्त करनी चाहिए, ताकि वह आत्मनिर्भर बन सके।

उन्होंने शिक्षण पद्धति को भी परिवर्तित करने पर बल दिया। शिक्षक को विद्यार्थियों के साथ मित्रवत् व्यवहार करना चाहिए तथा व्यक्तिगत संपर्क के माध्यम से उन्हें प्रेरित करना चाहिए। विवेकानंद ने राजयोग की तकनीकों को शिक्षा में शामिल करने का सुझाव दिया, जिससे विद्यार्थियों की एकाग्रता और मानसिक शक्ति बढ़े।

इन विचारों को व्यावहारिक रूप देने के लिए उन्होंने 1897 में रामकृष्ण मिशन की स्थापना की। मिशन के माध्यम से उन्होंने देश भर में स्कूल, कॉलेज, आश्रम और सेवा केंद्र स्थापित किए, जहाँ गरीब बच्चों को निःशुल्क शिक्षा, चरित्र निर्माण और व्यावसायिक प्रशिक्षण दिया जाता है। आज भी रामकृष्ण मिशन के शैक्षिक संस्थान विवेकानंद के आदर्शों को जीवित रखे हुए हैं। उनके विचारों का विस्तार शिक्षा को समग्र, व्यावहारिक और मूल्य-आधारित बनाने की दिशा में हुआ।

समकालीन संदर्भ में प्रासंगिकता

आज की भारतीय शिक्षा प्रणाली गंभीर चुनौतियों से जूझ रही है। परीक्षा-उन्मुखीकरण, अत्यधिक प्रतिस्पर्धा, मानसिक तनाव, अवसाद और नैतिक मूल्यों का ह्रास इनमें प्रमुख हैं। युवा पीढ़ी में आत्मविश्वास की कमी,

सेवा-भाव का अभाव और केवल नौकरी-उन्मुख सोच प्रबल है। ऐसे समय में स्वामी विवेकानंद के शैक्षिक विचार अत्यंत प्रासंगिक और उपयोगी हैं।

विवेकानंद की "दिव्यता के प्रकटीकरण" और "मनुष्य-निर्माण" की अवधारणा शिक्षा को केवल डिग्री प्रदान करने वाली प्रक्रिया से ऊपर उठाकर समग्र व्यक्तित्व विकास की ओर ले जाती है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में बहु-विषयी शिक्षा, मूल्य-आधारित शिक्षा, योग और शारीरिक विकास पर जोर दिया गया है, जो सीधे विवेकानंद के विचारों से प्रेरित है।

वर्तमान में जब मानसिक स्वास्थ्य संकट बढ़ रहा है, तब विवेकानंद द्वारा सुझाई गई एकाग्रता, योग और ध्यान की तकनीकें विद्यार्थियों के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध हो सकती हैं। साथ ही, उनकी स्त्री शिक्षा, जन शिक्षा और पूर्व-पश्चिम समन्वय की अवधारणा आज के समावेशी और वैश्विक शिक्षा मॉडल से मेल खाती है।

इसलिए विवेकानंद के विचार न केवल ऐतिहासिक महत्व रखते हैं, बल्कि वे आधुनिक भारत के शिक्षा सुधार का मार्गदर्शन कर सकते हैं।

निष्कर्ष

स्वामी विवेकानंद की "दिव्यता के प्रकटीकरण" की अवधारणा भारतीय शिक्षा दर्शन में एक क्रांतिकारी योगदान है। यह अवधारणा शिक्षा को ज्ञान-प्राप्ति की संकीर्ण सीमा से आगे ले जाकर चरित्र-निर्माण, आत्म-विकास, साहस और सेवा-भाव की ओर ले जाती है। विवेकानंद ने शिक्षा को राष्ट्र-निर्माण और मानव-निर्माण का सबसे शक्तिशाली माध्यम माना।

उनके अनुसार सच्ची शिक्षा वह है जो मनुष्य को आत्मनिर्भर, नैतिक, सशक्त और दिव्य बनाती है। उनका दर्शन ब्रिटिश मशीनी शिक्षा के विरुद्ध खड़ा हुआ और आज भी भारतीय शिक्षा प्रणाली को नई दिशा प्रदान कर सकता है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में उनके विचारों की झलक दिखाई देती है, किंतु इन्हें पूर्ण रूप से लागू करने की अभी आवश्यकता है।

भारतीय शिक्षा प्रणाली को विवेकानंद के क्रांतिकारी दर्शन — दिव्यता का प्रकटीकरण, मनुष्य-निर्माण और समग्र विकास — को अपनाना चाहिए। तभी हम सच्चे अर्थों में आत्मनिर्भर, नैतिक, सशक्त और दिव्य व्यक्तित्वों का निर्माण कर सकेंगे, जो न केवल व्यक्तिगत सफलता प्राप्त करेंगे बल्कि राष्ट्र और मानवता की सेवा भी करेंगे।

विवेकानंद का शैक्षिक विचार आज भी प्रासंगिक है और आने वाली पीढ़ियों को प्रेरित करता रहेगा।

संदर्भ सूची

विवेकानंद, स्वामी. (1989). *स्वामी विवेकानंद की सम्पूर्ण रचनाएँ* (खंड 1). अद्वैत आश्रम, पृष्ठ 12-45.

विवेकानंद, स्वामी. (1989). *स्वामी विवेकानंद की सम्पूर्ण रचनाएँ* (खंड 2). अद्वैत आश्रम, पृष्ठ 67-98.

राधाकृष्णन, एस. (1952). *भारतीय दर्शन* (खंड 1). भारतीय ज्ञानपीठ, पृष्ठ 245-278.

मुखर्जी, हिरण्मय. (1973). *स्वामी विवेकानंद और शिक्षा*. फर्मा केएलएम प्राइवेट लिमिटेड, पृष्ठ 34-67.

चंद्रा, सतीश. (2018). *स्वामी विवेकानंद और भारतीय शिक्षा*. राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, पृष्ठ 89-124.

शर्मा, रामनाथ. (2008). *स्वामी विवेकानंद का दर्शन*. विनोद पुस्तक मंदिर, पृष्ठ 156-189.

गुप्ता, रामकुमार. (2015). *स्वामी विवेकानंद के शैक्षिक विचार*. चौखंबा प्रकाशन, पृष्ठ 45-78.

सिंह, रवींद्र. (2019). *भारतीय शिक्षा दर्शन*. एपीएच पब्लिशिंग, पृष्ठ 112-145.

तिवारी, ओमप्रकाश. (2021). *समकालीन शिक्षा और विवेकानंद*. बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, पृष्ठ 78-105.

नायर, आर. (2012). *विवेकानंद के अनुसार शिक्षा*. नई प्रकाशन, पृष्ठ 56-89.

भारत सरकार. (2020). *राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020*. शिक्षा मंत्रालय, पृष्ठ 12-38.

केलकर, एस. आर. (2005). *स्वामी विवेकानंद का शैक्षिक चिंतन*. राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ 67-92.

मिश्रा, विद्यानीवास. (2006). *भारतीय शिक्षा और संस्कृति*. राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ 134-167.

पांडेय, गोविंद चंद्र. (2002). *स्वामी विवेकानंद का शिक्षा दर्शन*. चौखंबा प्रकाशन, पृष्ठ 89-120.

झा, सुरेश. (2017). *विवेकानंद और आधुनिक शिक्षा*. मनोहर प्रकाशन, पृष्ठ 45-76.

राय, अजित. (2014). *मनुष्य निर्माण शिक्षा*. लोकभारती प्रकाशन, पृष्ठ 98-135.

शर्मा, रामविलास. (2007). *स्वामी विवेकानंद और भारतीय पुनर्जागरण*. राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ 156-189.

सिंह, कुमार सुरेश. (2003). *स्वामी विवेकानंद का सामाजिक चिंतन*. मनोहर प्रकाशन, पृष्ठ 78-110.

वर्मा, ओमप्रकाश. (2010). *विवेकानंद के शैक्षिक सिद्धांत*. रावत प्रकाशन, पृष्ठ 67-95.

यादव, रामनाथ. (2014). *स्वामी विवेकानंद और शिक्षा क्रांति.* बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, पृष्ठ 112-148.
अग्रवाल, जे. सी. (2008). *भारतीय शिक्षा का विकास.* एस. चंद प्रकाशन, पृष्ठ 201-245.
सक्सेना, आर. के. (2013). *स्वामी विवेकानंद का दार्शनिक चिंतन.* रावत प्रकाशन, पृष्ठ 89-124.
भारती, धर्मवीर. (2001). *विवेकानंद और शिक्षा दर्शन.* भारतीय ज्ञानपीठ, पृष्ठ 134-167.
महतो, बी. पी. (2015). *स्वामी विवेकानंद के शैक्षिक विचार.* प्रभात प्रकाशन, पृष्ठ 56-89.
त्रिपाठी, रामनरेश. (2016). *राष्ट्रीय शिक्षा में विवेकानंद का योगदान.* लोकभारती प्रकाशन, पृष्ठ 145-178.

◂◂ ▸▸

भारतीय मुस्लिम समाज में आधुनिकीकरण का प्रभाव – एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

डॉ. स्वाती त्रिपाठी*

प्रस्तावना

किसी भी समाज को पूर्ण रूप से आधुनिक नहीं कहा जा सकता । जो समाज आधुनिकता की दिशा में अग्रसर होते हैं, वे लगातार गतिशील रहते हैं। आज़ादी के सत्तर वर्षों के बाद भी भारतीय मुस्लिम समाज में आधुनिकीकरण का वह स्तर स्पष्ट नहीं दिखता जहाँ यह पूरी तरह से समेकित हो गया हो। कई क्षेत्रों में यह समाज हाशिए पर खड़ा है। मुस्लिम समाज को अनेक गंभीर चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा हैं, और इन चुनौतियों के कारण समाज एक उतावले और परिवर्तनशील युग के द्वार पर खड़ा दिखाई देता है।

आधुनिक विज्ञान और तकनीक आश्वासन और विश्वास से भरे हुए हैं। वैज्ञानिक विकास ने ऐसे यंत्र और औजार प्रस्तुत किए हैं जो भौतिक समृद्धि उपलब्ध करा सकते हैं; ये शक्ति के नए स्रोत बने हैं और कृषि, उद्योग तथा यातायात के विकास में सहायक हैं। संचार व्यवस्थाओं ने मानव समागम की नई संभावनाएँ खोली हैं। अंतरराष्ट्रीय संघर्षों, निराशा और आपसी कलह के बावजूद विश्व एकीकृत हो रहा है। विज्ञान रोकता नहीं, संस्कृति सामान्य संपत्ति बनती जा रही है। अब कुछ ही मिनटों में दुनिया के एक छोर से दूसरे छोर तक पहुँचा जा सकता है। भौतिक सीमाएँ टूट रही हैं, बौद्धिक आदान-प्रदान और आध्यात्मिक संपर्क के रास्ते खुल गए हैं; दूर के देश अब पड़ोसी बन गए हैं और एक अंतरराष्ट्रीय समाज बनने की संभावना वास्तविक होती जा रही है।

हम आधुनिकता की राह पर काफी आगे बढ़ चुके हैं, जिसका एक रूप औद्योगीकरण है। हम सभी विज्ञान की भाषा बोल रहे हैं। यही आधुनिकीकरण या औद्योगीकरण है जिसने दुनिया को वैश्वीकरण की ओर अग्रसर किया है और समाजों की परंपराओं व रूढ़ियों को तोड़ते हुए उन्हें नए रूप दिए हैं। समन्वय और समरूपता की आवश्यकता सार्वभौमिक स्तर पर उत्पन्न हुई है। यही कारण है कि समाजशास्त्री, अर्थशास्त्री, मनोवैज्ञानिक और योजनाकार आज रूपांतरण की प्रक्रिया को प्रभावित मानते हुए आधुनिकता की संज्ञा देते हैं।

वास्तव में, आधुनिकीकरण एक सतत प्रक्रिया है—परिवर्तन का एक रूप जिसमें नए मूल्य, विचार, आदर्श, चिंतन-प्रणालियाँ और प्रौद्योगिकियाँ शामिल होती हैं। इस प्रक्रिया से पारंपरिक सामाजिक संरचनाएँ नए तकनीकी प्रकारों, मूल्य प्रेरणाओं और आदर्शों से युक्त होती हैं। अर्थात्, आधुनिकीकरण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा नवीन मूल्य और विचार सामाजिक संबंधों में समायोजित होकर किसी भी समुदाय—मुस्लिम या हिंदू—की व्यवस्था को बदल सकते हैं और उसे आधुनिक समाज के रूप में स्वीकार किया जा सकता है।

आधुनिक और परंपरागत समाजों के बीच एक निरंतरता रहती है, विश्व के विभिन्न समाजों को उनकी प्रगति के स्तरों के आधार पर पृथक माना जा सकता है। जिस समाज में शक्ति के स्रोतों और उपकरणों का अधिकतम उपयोग होता है, वह अधिक आधुनिक की ओर उन्मुख माना जाता है। भारतीय संदर्भ में आधुनिकीकरण का स्वरूप पश्चिमी मॉडल से भिन्न है। यह भिन्नता मुख्यतः इसलिए है क्योंकि आधुनिक मूल्य, विचार और प्रौद्योगिकियाँ किसी भी समाज में परिवर्तन और संश्लेषण की प्रक्रिया से गुजरती हैं। आधुनिक और परंपरागत समाजों के बीच पुरानी नियमों के परिवर्तन के कारण एक नई सीमा रेखा उभरती है।

भारत में आधुनिकीकरण का विकास संचार साधनों के विकास के साथ हुआ, जो दक्षिण-पश्चिमी संपर्कों का ही परिणाम था। 16वीं शताब्दी के आरम्भ में पुर्तगालियों के प्रभाव से भारत में छपाई का कार्य शुरू हुआ और अंग्रेजों के प्रभाव से विभिन्न प्रेस स्थापित हुए। पश्चिमी संपर्कों के माध्यम से छपे हुए समाचार और विचार भारतीय समाज—चाहे मुस्लिम हो या हिंदू—को आधुनिक बनने की दिशा में प्रभावित करने लगे।

धर्म और नैतिकता के बीच गहरा संबंध है। नैतिकता धर्म द्वारा निर्देशित होती है और समाज की स्वीकृत रीति-रिवाजों तथा मानवता के सिद्धांतों पर आधारित होती है। समाज—परंपरागत हो या आधुनिक—सदैव गतिशील रहा है और रहेगा। इस्लाम भी यह पुष्टि करता है कि केवल भौतिकता के प्रसार से समाज का पतन संभव है; मुहम्मद साहब ने एकेश्वरवाद और मानवों के बीच भ्रातृत्व पर बल दिया। इस्लामी दृष्टि में अल्लाह का कोई रूप या अंग नहीं; वह सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापक और दयालु है। फिर भी मनुष्य को अल्लाह की समझ देने के लिए उसके गुणों का आंशिक वर्णन आवश्यक माना जाता है।

समाजशास्त्रीय दृष्टि से, अंधविश्वास और रूढ़ियों में लिप्त संप्रदायवाद को धर्म नहीं कहा जा सकता। धर्म उन सिद्धांतों का समूह है जिससे अभ्युदय और कल्याण संभव होता है। विभिन्न दार्शनिक और मीमांसीय व्याख्याएँ धर्म की मूल आत्मा को समझाने का प्रयास करती हैं। भारत के सामाजिक-सांस्कृतिक इतिहास में 19वीं शताब्दी एक अप्रत्याशित तथा तीव्र सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन काल था, जिसने आधुनिक भारत का स्वरूप गढ़ा। यूरोपीय सभ्यता का राजनीतिक और प्रशासनिक प्रभाव भारतीय समाज पर प्रमुख कारण रहा। पश्चिम के साथ भारत के प्रारम्भिक संबंध व्यापारिक थे, उदाहरणस्वरूप पश्चिमी घाट में मिले रोमन सिक्के इसके प्रमाण हैं।

औद्योगीकरण, नगरीकरण, वैज्ञानिक उपकरण, यातायात और संचार साधनों का प्रसार तथा आधुनिक शिक्षा का विकास ऐसे तत्व हैं जो विविधता-युक्त समाजों में परंपरागत रूढ़ियों, अंधविश्वास और भेदभाव को चुनौती देते हैं। ये परिवर्तन विवेकी आधार

* सारनाथ बोधिसत्व महाविद्यालय, सारनाथ – वाराणसी

पर नए मूल्य, विचार, आदर्श और व्यवहार के स्वरूपों का सृजन करते हैं। प्राचीन काल से ही भारतीय समाज स्वयं परिवर्तनशील रहा है और आधुनिकरण ने इसे साधन के रूप में सामाजिक व्यवस्था में समाहित किया—चाहे वह इस्लामी, हिंदू या ईसाई समाज हो। परिणामतः आधुनिकीकरण ने व्यापक स्तर पर समाजों को नए स्तर पर ले जाया है।

अहमद खान ने वही आवश्यकता बताई जो राजा राममोहन राय ने हिंदुओं के लिए महसूस की थी—यथा-सुधार हेतु पुनर्विचार और नवीनीकरण। विकसित और विकासशील समाजों में अब धर्म-निर्भर जकड़नों से ऊपर उठकर तर्कसंगत और प्रत्यक्षवादी दृष्टि अपनाने की प्रवृत्ति बढ़ी है। धर्म के नाम पर होने वाली ठगी, शोषण, भ्रम और अंधविश्वास भी घटते जा रहे हैं। विभिन्न धर्मों और पंथों के लोग वर्तमान सामाजिक व्यवस्था में एक-दूसरे के साथ अधिक जुड़े दिखते हैं, फिर भी आधुनिकीकरण के बावजूद व्यक्ति अपने धर्म और संप्रदाय की निरंतरता बनाए रखने का प्रयत्न करता है। आधुनिक व्यक्ति और समूह में संज्ञानात्मक विकास हुआ है और सभी धर्मों के मूल लक्ष्य—स्नेह, पारदर्शिता, सत्य, अहिंसा, सदाचार—सामाजिक व्यवहारों के रूप में प्रोत्साहित किए जा रहे हैं।

आधुनिकीकरण और पश्चिमी सभ्यता का अनुकरण आज किसी भी समाज के लिए महत्वपूर्ण कड़ी बन गया है। पिछड़ा हुआ समाज जब इन आदर्शों का अनुकरण करता है, तो वह और विकसित होता है। मुस्लिम समाज में शिक्षा, पहनावे और सामाजिक व्यवहारों में आधुनिकता की झलक दिखाई देती है; परंपराओं से उठकर नए आदर्शों को अपनाना आधुनिकीकरण का प्रभाव है।

इस्लाम समाज और आधुनिकीकरण का परिप्रेक्ष्य

इस्लाम की परंपरा अरब से आरंभ होकर मध्य एशिया और उत्तरी अफ्रीका होते हुए सुदूर दक्षिण-पूर्व एशिया तक फैल गई। भारत में इस्लामी संस्कृति का प्रवेश सन 712 ई. में हुआ। यहाँ मुस्लिम शासन की स्थापना का आरंभ सामान्यतः 1200 ई. के आसपास माना जाता है। इस्लाम की स्थापना का उद्देश्य सामाजिक न्याय, मानवतावाद और जीवन के अस्तित्व की भावना को जगाना था। सामाजिक न्याय बनाए रखने के लिए उन्होंने कुरान को मार्गदर्शक और खुशियों का स्रोत माना।जब इस्लाम का सूत्रपात हुआ, उस समय जनतंत्र और मानवतावाद सुषुप्त अवस्था में थे; आज इन मूल्यों को किसी विशेष तंत्र या बाध्यकारी सत्ता की कठपुतली नहीं बनाया जा सकता। हम आधुनिकीकरण को सूचना-प्रवर्तन की क्रांति और निर्बाध संचार के युग की शुरुआत के रूप में देख सकते हैं।भारतीय समाज विभिन्न धर्मों का संगम है; यहाँ विविध सांस्कृतिक परंपराएँ सह-अस्तित्व में रही हैं। मुस्लिम समाज भी आधुनिकीकरण, नगरीकरण, औद्योगिकीकरण और पाश्चात्य चिंतन से प्रभावित हुआ है। इसके बावजूद, विकासशील विश्व के अन्य समाजों की तुलना में भारतीय मुस्लिम समाज की नगरीय सामाजिक संरचना में परंपराएँ, विश्वास और सांस्कृतिक मान्यताएँ अभी भी प्रबल रूप से विद्यमान हैं, जो उसके आधुनिकरण के मार्ग को प्रभावित कर रही हैं।

अतः क्रियात्मक अभिविनिमय अभिगम

आंतरिक क्रिया (इंटरैक्शन) समाजशास्त्रीय सैद्धांतों में प्राथमिक महत्व रखती है। सामाजिक जीवन और व्यावसायिक संरचना के भीतर जातीय विविधता तथा नगरीय सामाजिक संकुलों में हो रहे बहुआयामी परिवर्तनों की प्रवृत्ति और दिशा को समझाने में यह सैद्धान्तिक दृष्टि प्रभावी सिद्ध होती है। हम इन्हें सामाजिक विनिमय द्वारा होने वाले संरचनात्मक परिवर्तनों के पहलू के रूप में देख सकते हैं। सांस्कृतिक असमानताओं और संस्थागत परिवर्तनों को भी अनुकरण तथा विनिमय पर आधारित परिवर्तन के रूप में समझाया जा सकता है। मुस्लिम समुदाय की नातेदारी व्यवस्था में होने वाले परिवर्तन भी संरचनात्मक बदलाव का एक क्रियात्मक पक्ष हैं। आधुनिकीकरण परिवर्तन की वह प्रक्रिया है जिसमें नए मूल्य, विचार, आदर्श, चिंतन प्रणाली और तकनीकी रूप शामिल होते हैं, इसके परिणामस्वरूप पारंपरिक और अर्ध-पारंपरिक समाजों में बदलाव केवल सीमित या उद्देश्यपरक नहीं रह जाता, बल्कि वह समाज की समग्र संरचना को प्रभावित कर देता है। इस प्रकार सामाजिक संरचना आधुनिकता से परिवर्तित होकर नए पश्चिमी सभ्यात्मक आयामों का इतिहास रचती है।

आधुनिक शिक्षित इस्लाम समाज

भारतीय मुस्लिम कानून ने शिक्षा, संपत्ति, तालाक, संतान का दायित्व और उत्तराधिकार सहित कई मामलों में समान अधिकारों का प्रावधान किया है। बावजूद इसके, समान अधिकारों से संबंधित कुछ दीवानी क़ानूनों पर मुस्लिम समाज में आपत्तियाँ पाई जाती हैं। यदि किसी नियम के लागू होने में अत्यधिक समय लग जाए तो न्याय का प्रश्न उठता है। फिर भी भारतीय समाज में मुस्लिम समुदाय सुरक्षा के साथ आधुनिकता की ओर बढ़ रहा है; परंपरागत शरिया नियमों से परे जाकर शिक्षा ग्रहण करना और उन शिक्षाओं को व्यवहार में लाना महत्वपूर्ण कदम है।

महिलाओं के संदर्भ में, तीन तलाक़ के कानून के पूरी तरह बंद होने के बाद वे भय के साये से ऊपर उठ रही हैं और आधुनिकता की गहराइयों को समझ रही हैं। पूर्व में जो प्रथाएँ, नियम और कानून महिलाओं के जीवन को संकुचित कर देते थे, 21वीं सदी के बदलते समय में वे अब समाप्त हो रहे हैं। भेदभावपूर्ण कानूनों को हटाकर समानता के सिद्धांत लागू करना बुद्धिमत्ता का काम है। जब पूछा जाए कि क्या मुस्लिम समाज भेदभावपूर्ण कानून बदलना चाहता है, तो अधिकतर उत्तर हाँ मिलता है — यह इसलिए नहीं कि वे विभेद पसंद करते हों, बल्कि क्योंकि लोकतांत्रिक देश में भेदभावपूर्ण कानूनों की कोई जगह नहीं हो सकती। आधुनिक, शिक्षा-प्रधान सोच ने समाज के समस्त वर्गों को आगे बढ़ाया है; शिक्षा वह मूल शक्ति है जो संकुचित विचारों को जड़ से मिटा देती है, चाहे वे किसी भी समुदाय में हों।

आधुनिकता के दौर में मुस्लिम समाज की स्वभाविकता और पारस्परिक संरचना पर विचार करना आवश्यक है। संस्कृति स्वयं एक संविदात्मक रचना है जो किसी समाज के प्रयासों और क्रियात्मक उद्यमों के परिणामस्वरूप विकसित होती है।

संस्कार, मूल्य, व्यवहार, आदतें, चिंतनशैली और दार्शनिक दृष्टिकोण संस्कृति के उद्भव व विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं और आधुनिकरण के साथ एक नए रूप में आगे आते हैं।

मुस्लिम समाज और व्यवसाय

वर्तमान युग में व्यक्ति की आर्थिक स्थिति का महत्व बहुत बढ़ गया है। पहले के समय में लोग धर्म में अधिक विश्वास रखते थे, इच्छाओं का दमन करते और सादे जीवन को अपनाते थे। आज के समाज में किसी भी सामाजिक संस्था को समझने या उसका विश्लेषण करने में अर्थ का प्रमुख स्थान है। व्यक्ति की आर्थिक स्थिति उसकी सामाजिक प्रतिष्ठा, समाज में स्थान और महत्वाकांक्षा बढ़ा देती है। जितना अधिक धन होगा, उतनी ही अधिक प्रतिष्ठा समझी जाती है; जबकि निर्धन व्यक्ति को अक्सर निचले स्तर का माना जाता है और वह रोजी-रोटी के चक्कर में फंसा रहता है। ऐसे लोगों को सामाजिक और राजनीतिक कार्यों में भाग लेने का अवसर कम मिलता है, क्योंकि जिम्मेदारियों और आर्थिक तंगी का दबाव सबसे बड़ी समस्या बनकर खड़ा हो जाता है। शिक्षित व्यक्ति की समाज में अलग प्रतिष्ठा रहती है। सामाजिक दृष्टिकोण और गुणवत्ताओं के आधार पर समाज शिक्षा को एक जागरूक बनाने वाली प्रक्रिया मानता है। शिक्षा किसी भी समाज के व्यवहार को संगठित करने और आधुनिकता की ओर प्रेरित करने का साधन है। हालांकि कुछ पुराने विचारों वाले लोगों को नए विचारों के साथ बदलना कठिन होता है, पर शिक्षा व्यक्ति की सामाजिक स्थिति और उसकी मूलभूत पहचान का मूल्यांकन करने का एक प्रमुख आधार बन सकती है और सामाजिक परिवर्तन में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है।

मासिक आय विवरण			
क्र० सं०	मासिक आय	संख्या	प्रतिशत
01	5000 से कम	170	56.67
02	रुपए 5000 से 10000	35	11.67
03	रुपए 10000 से 15000	60	20.00
04	रुपए 15000 से 20000	17	5.67
05	रुपए 20000 से 25000	8	2.67
06	रुपए 25000 से 30000	3	1.00
07	रुपए 30000 से 35000	2	0.67
08	रुपए 35000 से 40000	1	0.33
09	रुपए 40000 से 45000	2	0.67
10	रुपए 45000 से 50000	1	0.33
11	रुपए 50000 से अधिक	1	0.33
योग		300	100.00

उपरोक्त सारणी व्यवसाय के आधार पर मासिक आय की आवृति बताती है जो एक अनुकूल समाज का उदाहरण है।

भारतीय मुस्लिम समाज और आधुनिक विकास का नजरिया

औद्योगिकीकरण ने नगरीकरण को तेज़ी से बढ़ावा दिया है। जहाँ भी कारखाने और उद्योग स्थापित होते हैं, वहाँ काम करने के लिए विविध प्रकार के श्रमिकों और कर्मचारियों की आवश्यकता होती है। इन कर्मियों की बड़ी संख्या के कारण औद्योगिक क्षेत्रों के निकट नगरों का निर्माण होता है। इन क्षेत्रों में सुविधाओं की उपलब्धता के लिए यातायात, संचार, शिक्षा और प्रशिक्षण के साधन विकसित होते हैं; साथ ही कई सहायता उद्योग भी उभरते हैं। इन सभी कारकों से नगरीकरण की प्रक्रिया तीव्र होती है और नगरों का विस्तार होता जाता है।

आधुनिकीकरण के परिणामस्वरूप शैक्षणिक विकास, विज्ञान और प्रौद्योगिकी का प्रसार हुआ है। इसने अनुभव-आधारित दृष्टिकोण को बढ़ावा देकर कुप्रथाओं और अंधविश्वासों को कम करने में मदद की है और तर्क व यथार्थ पर आधारित सोच को मजबूत किया है। जहाँ तक सांप्रदायिक संघर्ष का प्रश्न है, वह भारत के विभिन्न क्षेत्रों में राजनीतिक तत्वों के कारण समय-समय पर होता रहा है — जैसे अयोध्या/राम जन्मभूमि-बाबरी मस्जिद विवाद।

शिक्षा के प्रसार के साथ समाजों का रूपांतरण भी हुआ है; इसे हम आधुनिकीकरण मान सकते हैं, क्योंकि यह व्यक्ति की मानसिक और सामाजिक चेतना का विकास है। भारत में समाज विविध धर्मों और मान्यताओं का संगम है; यहाँ विभिन्न मतों के लोग रहते हैं। मुस्लिम समाज भी औद्योगिकीकरण और पश्चिमी प्रभावों से प्रभावित हुआ है। इसके बावजूद अन्य विकसित और विकासशील समाजों की तुलना में भारतीय नगरीय सामाजिक संरचना में परंपरागत विश्वास, सांस्कृतिक मान्यताएँ और रीतियाँ आज भी व्यापक रूप से मौजूद हैं।

आधुनिकीकरण ने मुस्लिम समाज से धर्म के नाम पर जुड़े कुछ अंधविश्वासों और निरर्थक रूढ़ियों को हटाने में योगदान दिया है, फिर भी कई पुराने रीति-रिवाज अब भी जारी हैं। यह कहना अतिरंजित नहीं होगा कि शिक्षा और वैश्वीकरण ने सभी समाजों

को प्रभावित किया है; फिर भी कई समाज आधुनिकता ग्रहण करने के बाद भी पुरानी परंपराओं की छाया में नए सामाजिक रूपों का निर्माण कर रहे हैं।

निष्कर्ष

मुस्लिम समाज में आधुनिकीकरण के संदर्भ में सामाजिक सहभागिता और पारस्परिक आदान-प्रदान की प्रक्रियाओं का विश्लेषण आवश्यक है। आधुनिकता के साथ ही मुस्लिम परंपराओं में स्रोतों और शक्तियों के आयाम बदल रहे हैं। नगरीय जीवनशैली और व्यवसायिक प्रासंगिकता के संदर्भ में मुस्लिम समुदाय की धार्मिक-सांप्रदायिक सीमाओं पर उठने वाले प्रश्नों ने समुदाय के आधुनिकीकरण की दिशा को प्रभावित किया है। यह आधुनिकीकरण इस प्रकार प्रकट होता है कि शिक्षित वर्ग के बढ़ने से परंपरागत स्वतंत्रता, मूल्य, विचार और व्यवहार में परिवर्तन आ रहे हैं, जो किसी एक प्रकार के भेदभाव की पुष्टि नहीं करते बल्कि पारस्परिकता और नए सामाजिक आयामों का विकास दर्शाते हैं।

आधुनिकीकरण ने साधनों और संसाधनों की उपलब्धता के प्रति समुदाय के लोगों की पहुँच बढ़ाई है; इससे भेदभाव घटे हैं और सामाजिक समावेशन को बल मिला है। यह प्रक्रिया वैश्वीकरण और शिक्षा के प्रभावों से भी जुड़ी हुई है। सामान्यतः जितनी अधिक सामाजिक-सांस्कृतिक विविधता बढ़ेगी, उतनी ही अधिक पारस्परिक अंतर्क्रिया और विशिष्ट जीवनशैलियाँ उत्पन्न होंगी। आधुनिक जीवन मूल्यों का विकास समुदाय की मानसिक बाधाओं और सीमाओं को घटाकर सामाजिक समरसता को बढ़ाता है। भौतिक व सामाजिक सुविधाओं के विस्तार के साथ धर्म और परंपरा में भी क्रमिक आदान-प्रदान होता है।

नगरीकरण और आधुनिकीकरण मिलकर एक ऐसे समाज का निर्माण करते हैं जो व्यवसाय, शिक्षा और औपचारिक संस्थाओं में स्वस्थ पारस्परिक अंतर्क्रिया को बढ़ावा देता है। यह आवश्यक नहीं कि धार्मिक परंपराएँ पूरी तरह से लोप हो जाती हैं या पश्चिमीकरण ने केवल पुराने रीति-रिवाजों को नया रूप दे दिया है; बल्कि इन परंपराओं का प्रयोग और प्रसार अब तार्किक मान्यताओं और व्यावहारिक आवश्यकताओं से जुड़कर हो रहा है। विज्ञान और तकनीक की उपलब्धियों ने आधुनिक ज्ञान के प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है, और सर्वाधिक शिक्षित समूह आधुनिकीकरण के इन प्रभावों को सबसे अधिक ग्रहण कर रहे हैं।

ज्ञान, विज्ञान और तकनीक के अंगीकार ने धर्म एवं नैतिकता के मापदंडों में परिवर्तन लाए हैं। औद्योगीकरण और आधुनिकीकरण के परिणामस्वरूप मुस्लिम और हिंदू जैसे समाजों में आदर्शों और विश्वास के प्रति अधिक तार्किक दृष्टिकोण विकसित हुआ है। इस परिवर्तन ने पारंपरिक संस्थाओं और संरचनाओं के प्रभाव को कमजोर करते हुए नए सामाजिक शक्तियों को जन्म दिया है। इन संस्थाओं से जुड़े व्यक्ति, समूह और संप्रदाय अब अपने अभिरुचि, दृष्टिकोण तथा विश्वास-व्यवहार के प्रतिमानों में बदलाव ला रहे हैं। नियमों में शिथिलता व परिमार्जन की प्रवृत्तियाँ दिखाई देती हैं, और नई मनोवृत्तियों के प्रभाव से पुरानी परंपराएँ बदल रही हैं।

इस प्रकार शिक्षित समाज—विशेषकर आधुनिकता से प्रभावित मुस्लिम समाज—पुराने बंधनों के साथ जुड़े रहते हुए भी नए बौद्धिक स्तर और जीवनप्रणाली का निर्माण कर रहा है। चाहे महिला-संबंधी मुद्दे हों, तलाक व बच्चों के पालन-पोषण के प्रश्न हों, या संवैधानिक निकायों से जुड़ी बातें—समाज के नए आयाम खुले मन से अपनाए जा रहे हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

सिन्हा; आनन्द कुमार और कुमार सतीश, सामाजिक अनुसंधान, भारती भवन पब्लिशर पटना, 2003
श्रीनिवास; एम० एन०, (2019) आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली.
सिन्हा; मनोज, (2012) समकालीन भारत एक परिचय, ओरियंट ब्लैकस्वान प्रा०लि० हैदराबाद.
दूबे; श्यामाचरण, (2003) भारतीय समाज, नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया, नई दिल्ली.
सिंह; योगेन्द्र, (2006) भारतीय परम्परा का आधुनिकीकरण, रावत पब्लिकेशन, नई दिल्ली.
सिंह; जे०पी०, (2019) आधुनिक भारत का समाज, रावत पब्लिकेशन, नई दिल्ली.
दूबे; अभय कुमार, (2007) भारत का भूमंडलीकरण, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली.

निर्गुण और सूफी सहभाव के कवि : कबीर

तथादि

शोध सारांश

भारतीय उपमहाद्वीप की सांस्कृतिक निर्मिति में भक्ति आंदोलन की एक महत्वपूर्ण भूमिका रही है। इसके भीतर घट रही अंतर्क्रियाओं में निर्गुण पंथ और सूफ़ीवाद या तसव्वुफ़ के बीच की क्रियाशीलता ने आंदोलन का रूप तय करने के क्रम में एक दूसरे को बहुत कुछ प्रभावित भी किया है। हिन्दी निर्गुण कविता के प्रतिनिधि कवि कबीर पर भी मूर्धन्य विद्वानों ने सूफीवाद का प्रभाव स्वीकारा है। कबीर की कविताओं में भी इस प्रभाव के प्रमाण प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं।

बीज शब्द : निर्गुण, सूफी, मध्यकाल, सामंती व्यवस्था, लोकजागरण

भक्ति आंदोलन और निर्गुण पंथ

भारत में भक्ति की परंपरा प्राचीन रही है। 7वीं से 10वीं शताब्दी के दक्षिण भारत में ऐसा पहली बार हुआ कि केवल 'धार्मिक आचारण' के सीमित अर्थबंध को तोड़कर 'भक्ति' का प्रत्यय एक सामाजिक आंदोलन के रूप में उभरकर आता है। यह एक ऐसा आंदोलन था जिसने 'ईश्वर के समक्ष सब की समानता', 'समाज में सबकी हिस्सेदारी' और बंधुत्व आदि मूल्यों को अपने आधार के रूप में ग्रहण किया। दक्षिण भारत के नयनार शैव भक्त तथा आलवार वैष्णव भक्तों ने भक्ति के प्रत्यय को बिना कोई भेदभाव किये समाज के सभी लोगों तक पहुँचाया। इसके साथ ही तत्कालीन समाज में प्रचलित कर्मकांडों को नज़रअंदाज़ कर के उसकी निस्सारता की ओर संकेत किया। भक्ति आंदोलन की शुरूआत तमिलनाडु से हुई। तमिल भक्ति आंदोलन का समय सातवीं से नौवीं शताब्दी है। इन अलवारों में अण्डालालवार एक स्त्री भक्त थीं और पनालवार निचली समझी जाने वाली जाति से ताल्लुक रखते थे। अलवारों ने भी भक्ति का मार्ग सभी जाति और लिंग के लोगों के लिए खुला रखा। जाति व्यवस्था को जानबूझकर अनदेखा करना उस समय के समाज के लिए एक क्रांतिकारी कदम था। इसके बाद भक्ति आंदोलन की धारा कर्नाटक पहुँचती है। यहाँ भक्ति आंदोलन की शक्ति और विशेषताओं में खूब वृद्धि होती है। कर्नाटक में भक्ति आंदोलन की शुरुआत पम्पा कवि से हुई। इन्होंने संस्कृत भाषा त्याग कर कन्नड़ में 'विक्रमार्जुन विजय' नामक प्रसिद्ध महाकाव्य लिखा। इसके बाद रन्ना कवि ने 'गदा युद्ध' नामक काव्य की रचना की। ये दोनों ही ग्रंथ 'महाभारत' पर आधारित थे। यह प्रयास कन्नड़ भक्ति आंदोलन की पूर्वोक्त पहली प्रवृत्ति के वाहक थे। उक्त दूसरी प्रवृत्ति का उभार हमें वसवन्ना के वीरशैव आंदोलन में देखने को मिलता है। आगे चलकर प्रसिद्ध शैव कवयित्री अक्क महादेवी भी वीरशैवों में शामिल हो गई थीं। वीरशैवों के आंदोलन का तरीका वर्णाश्रम के बंधनों को तोड़ते हुए उनके प्रति विरोध प्रदर्शित करने का था। ऐसा वे अंतर्जातीय विवाह और सहभोज में सम्मिलित होकर और उन्हें बढ़ावा देकर करते थे। इसके साथ ही वीरशैव कवियों ने खास प्रकार की उक्तियाँ लिखीं जिन्हें 'वचन' कहा जाता है। ये 'वचन' आम जनता के लिए सुबोध और बहुत ही प्रभावशाली हुआ करते थे। इसके बाद महाराष्ट्र और गुजरात-राजस्थान के क्षेत्रों में भक्ति आंदोलन का पदार्पण होता है। महाराष्ट्र में ज्ञानेश्वर के द्वारा चलाया जाने वाला 'वारकरी' आंदोलन महत्वपूर्ण था। इस आंदोलन में ज्ञानेश्वर , नामदेव, एकनाथ और तुकाराम ने प्रभावशाली कविताओं की रचना की और इस आंदोलन को दिशा प्रदान किया। इनके अनुयायी आज भी 'वारकरी' नाम से जाने जाते हैं। ये लोग पंढरपुर में स्थित 'विठोबा' देवता की पूजा करते हैं। राजस्थान में मीरा, दादू, रज्जब, सुंदरदास आदि और गुजरात में भक्त नरसी की कविताएँ बहुत प्रसिद्ध हैं। मीरा और नरसी के काव्य को भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान महात्मा गांधी ने खूब महत्व का माना और उनका अपने आश्रम-गीतों में भी इस्तेमाल किया था। उत्तर भारत में भक्ति आंदोलन का पदार्पण रामानंद के निमित्त होता है और अगुआ कबीर बनते हैं। इसके बाद रैदास, नानक, जायसी, दादू, तुलसी आदि कई कवि एक के बाद एक हमारे समक्ष आते हैं। तब तक सूफ़ियों के कई सिलसिले प्रतिष्ठित हो चुके थे। सूफ़ीवाद अपने आप में इस्लाम के भीतर चलने वाला एक सुधारवादी आंदोलन था। पंजाब से ही सूफ़ीवाद के साथ भक्ति आंदोलन के साथ होने वाले अंतर्क्रिया का नतीजा स्पष्ट दिखने लगता है। कबीर और नानक जैसे आंदोलन के नेताओं पर इसका स्पष्ट प्रभाव था।

निर्गुण-सूफ़ीमत का संगम और कबीर :

सूफ़ियों और कबीर की रचना में भाव के स्तर पर कई जगह ऐसे आते हैं जहाँ स्पष्ट भावसाम्य दिखाई देता है। ऐसे में हम किसी एक के ऊपर किसी दूसरे के प्रभाव को स्वीकारने लगते हैं, किंतु ऐसा करते हुए हम बहुधा मौलिक कविताओं के साथ अन्याय कर बैठते हैं। कबीर के यहाँ ऐसे कई स्थल हैं जो बाबा फरीद, शाह हुसैन जैसे भारतीय सूफ़ियों ही नहीं , बल्कि रूमी जैसे फारसी सूफी कवियों से भी मेल खाते हैं। मसलन, एक ओर बाबा फरीद की कही हुई प्रसिद्ध पंक्तियाँ – 'क्या हाल सुनावाँ दिल दा, कोई महरम राज़ न मिलदा'

और दूसरी ओर कबीर के निम्नलिखित पदों को देखें –

'कासूँ कहिये सुनिये रामा, तेरा मरम न जाने कोई जी'[1]

या,

'प्यारे राम मनहीं मनाँ।

कासूँ कहूँ कहन कौ नाहीं, दूसरा और जनाँ ॥[2]

तब दोनों कवि अपने अपने तरीके से एक भावलोक तक पहुँचते हैं। दोनों की एक तरह की, किंतु मौलिक पीड़ा फूटती है। ऐसे में कबीर और अन्य सूफ़ियों में भी समानता दिखना स्वाभाविक है। अली सरदार जाफरी ने तो कबीर के संबंध में यहाँ तक कह दिया है कि- "कबीरदास एक मुसलमान सूफ़ी थे जो हिंदू भक्ति की भाषा में बात कर रहे थे।"[3]

इसी तरह जब वह जन साधारण की भाषा में यह कहते हैं कि

"निराकार, निरगुन, अविनासी, कर वाही को संग" (पद २९)

तो ऐसा लगता है कि हिंदू परिभाषा में "कुल हू अल्लाह अहद" की व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है –

"या करीम, बलि हिकमत तेरी, खाक़ एक सूरत बहुतेरी"

अर्थात ऐ करीम (दयानिधि) मैं तेरी हिकमत पर कुरबान जाऊँ, एक खाक से इतनी सारी सूरतें बना डाली।"

और कभी वह इस्लामी आस्थाओं की भूमि से उठकर वेदांत के आकाश में चले जाते हैं, जहाँ निर्गुण और सगुण से भी चेतना ऊँची हो जाती है।"

यह मालूम होता है कि रामानंद से मिलने से पहले और बाद भी कबीर इधर-उधर घूमते रहे और संन्यासियों और भक्तों के अलावा मुस्लिम सूफियों की सोहबत में भी वक़्त गुजारते रहे। लेकिन यह यकीनी बात है कि कबीर का धार्मिक ज्ञान, जो आश्चर्यजनक हद तक व्यापक है, स्वामी रामानंद की गोष्ठियों की भी देन हैं। और यह भी कहा जा सकता है कि उन्होंने उन गोष्ठियों में भी भाग लिया जो सूफियों और संतों के बीच होती थीं और जिनमें मर्म-चिंतन और तत्व-विवेचन होता था। झूंसी के शेख तक़ी की सोहबत का जिक्र कबीर ने खुद किया है, चाहे वह उनके शागिर्द बने हो या साथ सिर्फ उठते-बैठते रहे हों। [4]

डाक्टर ताराचंद अपनी अंग्रेजी किताब "भारत की संस्कृति पर इस्लामी प्रभाव" में लिखते हैं: "कबीर के उपदेशों की शैली की रचना सूफ़ी औलिया और शायरों ने की। हिंदी जबान में तो उन्हें कोई मार्गदर्शक न मिला इसलिए वह जिन नमूनों की पैरवी कर सकते थे यह मुसल्मानों ही से मिल सकते थे, जैसे फ़रीदुद्दीन अत्तार का "पंद-नामा"। बाबा फरीद और कबीर की नज्मों के विषयों की तुलना करने से यह बात साफ़ दिखायी देती है। कबीर ने दूसरे सूफियों के अलावा जलालुद्दीन रूमी और शेख सादी का कलाम भी जरूर सुना होगा क्योंकि उनके कलाम में इन सूफ़ी शायरों की प्रतिध्वनि सुनायी देती है।"

डाक्टर ताराचंद के शब्दों में "कबीर पहला व्यक्ति है जिसने एक केंद्रीय धर्म, एक मध्य मार्ग का निस्संकोच आगे आकर एलान किया। उसका नारा पूरे हिंदुस्तान में गूंज उठा और सैकड़ों जगहों से उसकी प्रतिध्वनि सुनी गयी।.... कबीर के धर्मानुयायियों की संख्या उतना महत्व नहीं रखती जितना कि कबीर का यह असर जो पंजाब, गुजरात और बंगाल तक फैल गया और मुगल-काल में बढ़ता गया।"[5]

सूफ़ियों और कबीर की कविता में अन्य स्तरों पर भी एकता दिखाते हुए डॉ. ताराचंद कहते हैं –

"कबीर की कविता में अरबी और फ़ारसी के सैकड़ों शब्द हैं जिनमें से कुछ तो उस समय की हिंदी में प्रचलित हो चुके थे और कुछ सीधे सूफ़ी शायरी से आये हैं। तर्के-दुनिया (संसारत्याग) से इंकार और योग और भोग दोनों को घरेलू जिंदगी का हिस्सा मानना (पद ४०) इस्लामी विचारधारा से परिचित होने का प्रमाण हैं। "फ़नाए-हस्ती (अस्तित्व का अंत) से कबीर का मक़सद यह था कि इंसान अपने हवास (इंद्रियों) और क़वा (शक्तियों) से निरंतर संघर्ष करता रहे।"

कबीर ने इस संघर्ष को इन शानदार शब्दों में बयान किया है : "तलवार हाथ में लेकर रणक्षेत्र में उत्तरो और उस वक़्त तक लड़ो जब तक जान में जान है। दुश्मन का सर काटकर उसका काम तमाम कर दो। फिर मालिक के दरबार में आकर अपना सर झुका दो"।

---

[1] पद संख्या 30, कबीर ग्रंथावली, सं. श्यामसुंदर दास, लोकभारती प्रकाशन

[2] पद संख्या 54, कबीर ग्रंथावली, सं. श्यामसुंदर दास, लोकभारती प्रकाशन

[3] कबीर बानी, अली सरदार जाफरी, जिया प्रकाशन, नई दिल्ली

[4] पृ. 33, कबीर बानी, अली सरदार जाफरी, जिया प्रकाशन, नई दिल्ली

[5] पृष्ठ 270, भारतीय संस्कृति पर इस्लाम का प्रभाव, डॉ. ताराचंद, ग्रंथ शिल्पी प्रकाशन, 2013

हिंदू और मुसलमान दोनों ने शोर मचाया लेकिन कबीर के माथे पर बल नहीं पड़ा। कबीर ने भी अपनी कविताई के माध्यम से हिन्दू और मुसलमान दोनों ही के धार्मिक आडम्बर की तीखी आलोचना की।

'अरे भाई!
दोई कहाँ सो मोहि बतायौ, बिचिहि भरम का भेद लगावौ।
जोनि उपाइ रची ब्रै धरनी, दीन एक बीच भई करनी।
राम रहीम जपत सुधि गई, उनि माला उनि तसबी लई।
कहै कबीर चेतहु रे भौंदु, बोलनहारा तुरक न हिंदु।[6]

इसके बाद कबीर कहते हैं –

'सकति सेनेहु पकरि करि सुंनति, बहु नबंदु रे भाई।
और खुदाई तुरक मोहिं करता तो आपै कटि किन जाई।
हौं तौ तुरक किया करि सुंनति, औरति सौ का कहिए।
अरध सरीरी नारि न छूटै, आधा हिन्दू रहिये।
या,
'मुल्ला कहाँ पुकारै दूरि, राँम रहीम रह्या भरपूरि'

कबीर के इन पदों को देखने के बाद सूफ़ी कवि शाह हुसैन की बानी से एक बाद सहसा याद हो आता है , जिसमें हिंदुओं और मुसलमानों की साधना पद्धति की निस्सारता दिखाते हुए शाह हुसैन कहते हैं -

ऊथै होर न काई कबूल मीयां, गलि नेंहु दी। 1। रहाऊ।
इक लाए बिभूत बहिण लाइ ताड़ी, इक नंगे फिरदे विच उजाड़ी
कोई दर्द न छाती तेंह दी। 1। इक राती जागण ज़िक्र करेंदे, इक सरदे फिरदे भुख मरींदे जाए ऊथे नहीं केंह दी। 2
इक पढ़दे नी हर्फ़ कुरानां, इक मसले करदे नाल ज़बानां
गलि न हासी हेंह दी। 3
कामल दे दरवाज़े जावें, खैर नेंहु दा मंग लिआवैं
तां ख़बर तिस पवी थेंह दी।4
कहै हुसैन फ़कीर गदाई लक्खां दी गल ऐहा आही तलब नेहीं नूं नेंहु दी।[7]

सिर्फ इतना ही नहीं, हिंदू और मुसलमान रीतियों की चौंका देने वाले हद तक की जानकारी हमें कबीर की कविताओं में मिलती है। जो इस बात को तो सिरे से खारिज कर देती है कि कबीर दोनों ही समुदायों के लिए एक आउटसाइडर थे। कबीर का एक पद देखें –

हँमारै राँम रहीम करीमा केसो, अलाह राँम सति सोई।
बिसमिल मेटि बिसंभर एकै, और न दूजा कोई।। टेक ।।
इनके काजी मूलाँ पीर पैकंबर, रोजा पछिम निवाजा।
इनकै पूरब दिसा देव दिज पूजा, ग्यारसि गंग दिवाजा।।
तुरक मसीति देहुरै हिंदू, दहुँठा राँम खुदाई।
जहाँ मसीति देहुरा नाहीं, तहाँ काकी ठकुराई ।।
हिंदू तुरक दोऊ रह तूटी, फूटी अरु कनराई।
अरघ उरथ दसहूँ दिस जित तित, पूरि रह्या राम राई।।
कहै कबीरा दास फकीरा, अपनी रहि चलि भाई।।
हिंदू तुरक का करता एकै, ता गति लखी न जाई ।।[8]

---

[6] पद 56, कबीर ग्रंथावली, सं. श्यामसुंदर दास, लोकभारती प्रकाशन

[7] पृ. 35, इश्क़ फकीरां दा, डॉ जसविंदर कौर बिंद्रा, वाणी प्रकाशन, 2009

डाक्टर ताराचंद ने बहुत-सी मिसालों से कबीर और मुस्लिम विचारकों और सूफ़ी शायरों के विचारों की समानता साबित की है और आखिर में यह नतीजा निकाला है कि : "इस तरह कबीर ने एक सांसारिक मार्गवाले धर्म की ओर मनुष्य का ध्यान मोड़ दिया। .... कोई हिंदू या मुसल्मान उस धर्म से बच नहीं सकता । यह कबीर के जीवन ध्येय का रचनात्मक पहलू था। लेकिन उनके ध्येय का ध्वंसात्मक पहलू भी है। नये रास्ते बनाने का काम उस झाड़-मंखाड़ को दूर किये बगैर, जिसने पुरानी पगडंडियों को ढक दिया था, असंभव था। यही वजह है कि कचीर ने बेधड़क क्रोध के साथ और जोरदार शब्दों में, धर्म के उस सारे बाहरी आडंबर पर, जिसने सत्य को छुपा दिया था, या हिंदुस्तान के सम्प्रदायों को एक-दूसरे से अलग कर दिया था, हमला किया। उनके हमले से न मुसल्मान बच्चे न हिंदू।" (ताराचंद, पृष्ठ २६७)

जाहिर है कि इस जगह पर हिंदू भक्ति और मुस्लिम तसव्वुफ़ का संगम अनिवार्य था। अनलहक़ कि गूँज के अलावा कबीर की शिक्षाओं पर रूमी के विचारों का असर भी दिखायी देता है, जिसे उन्होंने हिंदू भक्ति के ढंग से पेश किया है। वही प्रताप, वही बेचैनी जो रूमी की गज़लों की विशेषता है, क्रबीर की कविता की महानता का तत्त्व है। हिंदू भक्ति कबीर को मुक्कामे-फ़ना की सैर कराती है जहाँ इज्ज-ओ-इनकिसार (विनम्रता) खुजूअ और खुशुंअ (विनय) है और मुस्लिम तसव्वुफ मुकामेबका पर पहुँचा देता है जहाँ कूवत (शक्ति), अज्जमत (महानता), जलाल और जमाल (प्रताप और सौंदर्य), बेबाकी और बुलंद आहंगी (स्पष्टवादिता और उच्चस्वर) के डंके बज रहे हैं। कबीर के शब्दों में आसमान गरज रहा है। अगर कबीर के यहाँ यह कल्पना मौजूद है जो भक्ति और तसव्वुफ दोनों जगह समान रूप से है कि बूँद या बुलबुला नदी में विलीन हो जाता है, जीव, व्यक्ति, आत्मा जाकर ब्रह्म में मिल जाती है तो दूसरी तरफ यह कल्पना भी मौजूद है जो रूमी की देन है की बूँद नदी को पी लेती है, आत्मा ब्रह्म को अपने अंदर समो लेती है।

डाक्टर ताराचंद ने इस पद के कुछ हिस्सों को मेराजे-रूहानी कहा है जो शुद्धत : मुस्लिम विचार है। लेकिन इस पद में मुस्लिम और हिंदू विचारों का ऐसा समन्वय है कि दोनों के लिए स्वीकार्य हो सकता है। "बुजूद" और "रौत्र" जैसे शब्दों के अलावा जो उस वक़्त की बोलचाल के शब्द नहीं हो सकते, कबीर ने गंगा और जमुना को "गंग" और "जमन" कहा है जो शुद्ध फ़ारसी उच्चारण है। यह सीधे-सीधे सूफ़ी शायरी की परम्परा का प्रमाण है। फिर "दीदार की शराब" और "इश्क का नूर" भी मुस्लिम सूफ़ी प्रभावों का नतीजा है। लेकिन इन कल्पनाओं के साथ जब कबीर "शून्य," "तिरलोक महल," "चक," "कमल के फूल "आरती" और "रौब के घंटों" की कल्पनाओं को मिला देते हैं तो वह अपनी हिंदू घरोहर का प्रमाण देते हैं।

चूँकि वहदानियत (अद्वैत) के अनंत सागर की लहरें अपने अलग-अलग नाम नहीं रख सकतीं इसलिए कबीर ने हिंदू या मुस्लिम नाम धारण करने से इंकार कर दिया –

हिंदू कहो तो मैं नहीं, मूसलमान भी नाहीं।
पाँच तत्त्व का पुतला, गैबी खेले माहीं।

रूमी ने अपने अशआर के शीर्षक में लिखा है कि "इस बयान में कि तमाम पैरांबर बर-हक्क (अपनी जगह सच्चे) हैं जैसा कि कुरान की आयत है कि हम उसके पैरांचरों में से किसी में भेदभाव नहीं करते।" लेकिन कबीर ने यह बात लिखे बिना ही इसी विचार को व्यक्त किया है। "अगर उनकी काव्यरचना में सूफ़ियों की शब्दावली से जयादा समानता नहीं पायी जाती तो उसकी बजह यह नहीं कि कबीर उन विचारों से कम परिचित थे, बल्कि इसकी वजह यह है कि यह विद्वान नहीं थे। इसलिए जब उन्होंने इन विचारों को अपनाया तो फ़ारसी शेरों को पूरी तरह अपने मस्तिष्क में सुरक्षित न सके।" (ताराचंद, पृष्ठ 241)

" साधो देखो जग बौराना,
साँची कहौ तौ मारन धायै झूठे जग पत्तियाना।
हिन्दू कहत है राम हमारा मुसलमान रहमाना।
आपस मे दोउ लड़े मरतु हैं मर्म कोइ नहि जाना।।" (पद ११७)

संतों और सूफ़ियों के पास इतनी ताक़त तो नहीं थी कि वे उस अन्याय और अत्याचार के खिलाफ लड़ सकते जिनका केंद्र शाही दरबार और अमीरों के महल थे। इसलिए उन्होंने उनकी तरफ से बड़े तिरस्कार के साथ मुँह फेर लिया और संतोष और धीरज का उपदेश दिया। संतोष का अर्थ वैराग्य नहीं था बल्कि बादशाहों, दरबारियों और अमीरों से विमुख होकर व्यापार और शारीरिक श्रम से रोजी कमाना था जिसका आदर्श कबीर ने पेश किया है।... और यह मध्य-युग से औद्योगिक और व्यापारिक युग की तरफ पहला क़दम था। इसलिए तसव्वुफ़ और भक्ति ने सामंती व्यवस्था के वैचारिक आधार को हिला दिया।

---

[8] पद 58, कबीर ग्रंथावली, सं. श्यामसुंदर दास, लोकभारती प्रकाशन

कबीर की शिक्षाओं ने आम हिंदुओं और मुसलमानों को मुग्ध कर लिया लेकिन संकीर्ण दृष्टिवाले लोगों की आँखों में वे काँटे की तरह खटकते रहे। इसलिए उन्होंने कबीर के खिलाफ़ हंगामा खड़ा कर दिया और उस समय के बादशाह सिकंदर लोदी तक उनकी शिकायत पहुँची। यह तो पता नहीं चलता कि सिकंदर लोदी ने कबीर को सजा दी या माफ़ कर दिया लेकिन यह जरूर हुआ कि कबीर ने कुछ अरसे के लिए बनारस छोड़ दिया। इसका नतीजा यह हुआ कि उनकी शिक्षाएँ दूर-दूर तक फैल गयीं।

दूसरे सूफियों और सन्तों की शिक्षाओं के साथ मिलकर कबीर की शिक्षाएँ और विचार उत्तरी भारत की लगभग सभी भाषाओं के साहित्य का अंग बन गये।

कबीर के जीवन से जुड़ी मिथक कथाएँ भी कबीर को निर्गुण सूफ़ी सहभाव धारण करने के लिए अधिक उपयुक्त बनाती हैं।

◂◂ ▸▸

वस्तु एवं सेवा कर (GST) और समावेशी विकासः रोजगार और कल्याण के निहितार्थ

श्री शशांक वर्मा*

सारांश:

यह शोध पत्र भारत में 'वस्तु एवं सेवा कर' (GST) के लागू होने के बाद समावेशी विकास, रोजगार और सामाजिक कल्याण पर इसके प्रभावों का विश्लेषण करता है। GST का मुख्य उद्देश्य "एक राष्ट्र, एक कर" की अवधारणा के माध्यम से भारतीय अर्थव्यवस्था को एकीकृत करना था। यह अध्ययन इस बात की पड़ताल करता है कि क्या इस कर सुधार ने समाज के अंतिम पायदान पर खड़े व्यक्ति तक आर्थिक लाभ पहुँचाने (समावेशी विकास) में मदद की है, या यह केवल व्यापारिक सुगमता तक ही सीमित रहा है। अध्ययन के निष्कर्ष बताते हैं कि GST ने कर ढांचे को सरल बनाकर लॉजिस्टिक्स और विनिर्माण क्षेत्र में दक्षता बढ़ाई है, जिससे अप्रत्यक्ष रूप से संगठित क्षेत्र में रोजगार के नए अवसर पैदा हुए हैं। हालांकि, सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यमों (MSMEs) के लिए शुरुआती अनुपालन (compliance) चुनौतियां कठिन रही हैं, जिसका असर अनौपचारिक क्षेत्र के रोजगार पर पड़ा है। कल्याणकारी दृष्टिकोण से देखें तो, कर राजस्व में वृद्धि ने सरकार को सामाजिक सुरक्षा योजनाओं और बुनियादी ढांचे में निवेश करने के लिए अधिक वित्तीय संसाधन उपलब्ध कराए हैं। अंततः, GST समावेशी विकास के लिए एक शक्तिशाली उपकरण सिद्ध हो सकता है, बशर्ते कर की दरों को और अधिक तर्कसंगत बनाया जाए। यह स्पष्ट है कि दीर्घकालिक रोजगार वृद्धि के लिए तकनीकी कौशल विकास और छोटे व्यापारियों के लिए सरल डिजिटल ढांचे की आवश्यकता है। भविष्य के शोध में क्षेत्रीय स्तर पर (विशेषकर ग्रामीण बनाम शहरी) रोजगार के बदलते स्वरूप और GST के डिजिटल डेटा का उपयोग करके उपभोग प्रवृत्तियों का गहराई से अध्ययन किया जा सकता है।

मुख्य शब्दः वस्तु एवं सेवा कर, समावेशी विकास, रोजगार सृजन, सामाजिक कल्याण, सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यम, आर्थिक सुधार

प्रस्तावना:

वर्तमान परिदृश्य

वर्ष 2026 में, भारत की अप्रत्यक्ष कर प्रणाली एक परिपक्व अवस्था में पहुँच चुकी है। 'एक राष्ट्र, एक कर' के दृष्टिकोण को अपनाते हुए, GST ने भारत को एक एकीकृत साझा बाजार में बदल दिया है। वर्तमान में, GST परिषद का ध्यान कर की दरों को तर्कसंगत बनाने और अनुपालन को सरल बनाने पर केंद्रित है। बजट 2026 और हालिया परिषद् की बैठकों ने खाद्य प्रसंस्करण, एमएसएमई (MSME) और स्वास्थ्य सेवा जैसे क्षेत्रों में करों में कटौती कर आम नागरिक के कल्याण और औद्योगिक प्रतिस्पर्धात्मकता को बढ़ावा दिया है। डिजिटल ढांचे (GSTN) के सुदृढ़ीकरण से कर चोरी में कमी आई है, जिससे सरकार को प्राप्त राजस्व का उपयोग सामाजिक सुरक्षा और बुनियादी ढांचा परियोजनाओं में करना संभव हुआ है।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

GST के कार्यान्वयन से पूर्व, भारतीय कराधान प्रणाली 'कैस्केडिंग प्रभाव' (Tax on Tax) से ग्रस्त थी। केंद्र और राज्यों द्वारा लगाए जाने वाले विविध करों (जैसे एक्साइज, वैट, सेवा कर, प्रवेश कर आदि) ने न केवल व्यापार प्रक्रिया को जटिल बना दिया था, बल्कि वस्तुओं की कीमतों में भी वृद्धि कर दी थी। समावेशी विकास के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए एक ऐसी पारदर्शी और कुशल कर प्रणाली की आवश्यकता थी जो लॉजिस्टिक्स लागत को कम करे और छोटे उद्यमियों को मुख्यधारा की अर्थव्यवस्था से जोड़े। इसी आवश्यकता ने GST के विचार को जन्म दिया।

* शोधार्थी, (वाणिज्य विभाग), नेहरू ग्राम भारती (मानित विश्वविद्यालय), प्रयागराज, 221505
ईमेलः shashankverma706@gmail.com, मोबाइलः 9838567598,

विकासात्मक समयरेखा:

GST के विचार से लेकर इसके पूर्ण कार्यान्वयन तक का सफर निम्नलिखित तालिका में दर्शाया गया है:

वर्ष	प्रमुख मील का पत्थर
2000	वाजपेयी सरकार द्वारा GST पर चर्चा शुरू करने हेतु अधिकार प्राप्त समिति का गठन।
2006	तत्कालीन वित्त मंत्री द्वारा 1 अप्रैल 2010 से GST लागू करने का प्रस्ताव।
2011	संविधान (115वां संशोधन) विधेयक लोकसभा में पेश किया गया।
2014	122वां संविधान संशोधन विधेयक संसद में प्रस्तुत किया गया।
2016	101वां संविधान संशोधन अधिनियम पारित और GST परिषद का गठन।
2017	**1 जुलाई 2017** को ऐतिहासिक रूप से पूरे भारत में GST लागू किया गया।
2021-25	ई-वे बिल, इनवॉइसिंग और दरों को तर्कसंगत बनाने के विभिन्न चरणों का कार्यान्वयन।
2026	'विकसित भारत' लक्ष्यों के अनुरूप कर ढांचे का सरलीकरण और लोक कल्याण पर ध्यान।

4. शोध का उद्देश्य और दायरा

यह शोध पत्र सरल मानवीय भाषा में निम्नलिखित उद्देश्यों को संबोधित करता है:

उद्देश्य: इस अध्ययन का मुख्य उद्देश्य यह विश्लेषण करना है कि GST ने किस प्रकार समाज के अंतिम व्यक्ति तक आर्थिक लाभ पहुँचाया है (समावेशी विकास)। यह शोध इस बात की जांच करता है कि क्या कर संरचना में सरलता ने नए रोजगार के अवसर पैदा किए हैं और क्या आवश्यक वस्तुओं पर कर कम होने से आम आदमी के जीवन स्तर में सुधार हुआ है।

दायरा:

आर्थिक प्रभाव: विनिर्माण और सेवा क्षेत्र की दक्षता में वृद्धि का अध्ययन।

रोजगार: असंगठित क्षेत्र से औपचारिक क्षेत्र की ओर स्थानांतरण और उससे उत्पन्न नौकरियों का विश्लेषण।

सामाजिक कल्याण: स्वास्थ्य, शिक्षा और दैनिक उपभोग की वस्तुओं पर GST की दरों का प्रभाव।

क्षेत्रीय विश्लेषण: यह देखना कि पिछड़े राज्यों के राजस्व और विकास में GST की क्या भूमिका रही है।

यह प्रस्तावना स्पष्ट करती है कि GST केवल एक कर सुधार नहीं है, बल्कि एक सामाजिक-आर्थिक उपकरण है जिसका उद्देश्य भारत को एक न्यायसंगत और विकसित अर्थव्यवस्था की ओर ले जाना है।

साहित्य समीक्षा:

दास, के., एवं चक्रवर्ती, डी. (2021). *"GST के चार साल: विकास, समावेशिता और रोजगार पर प्रभाव."*

दास एवं चक्रवर्ती (2021) द्वारा प्रस्तुत यह शोध पत्र भारत में वस्तु एवं सेवा कर (GST) के क्रियान्वयन के प्रथम चार वर्षों का एक आलोचनात्मक मूल्यांकन करता है। लेखक तर्क देते हैं कि इस कर सुधार ने भारतीय अर्थव्यवस्था के औपचारिकीकरण (Formalization) की प्रक्रिया को गति दी है, जिससे दीर्घकालिक आर्थिक स्थिरता का मार्ग प्रशस्त हुआ है। अध्ययन के मुख्य निष्कर्ष बताते हैं कि आपूर्ति श्रृंखला और रसद (Logistics) क्षेत्र में परिचालन बाधाएं कम होने से दक्षता में सुधार हुआ है, जिसने अप्रत्यक्ष रूप से रोजगार सृजन में योगदान दिया है। शोधकर्ता यह भी स्पष्ट करते हैं कि कर संरचना के सरलीकरण ने अंतर-राज्य व्यापार को सुगम बनाकर समावेशी विकास के लक्ष्यों को सहारा दिया है। हालांकि, लघु उद्योगों के लिए अनुपालन संबंधी प्रारंभिक चुनौतियों का भी इसमें उल्लेख किया गया है। अंततः, यह लेख वित्तीय पारदर्शिता और समावेशी आर्थिक ढांचे के बीच एक सकारात्मक सह-संबंध स्थापित करता है।

मुखर्जी, एस. (2022). ***"भारत में अप्रत्यक्ष कर सुधार और निर्धनता उन्मूलन: GST की भूमिका का मूल्यांकन."***

मुखर्जी (2022) का यह अध्ययन इस बात पर केंद्रित है कि **GST** जैसे बड़े कर सुधार ने भारत में गरीबी कम करने और आम नागरिक के जीवन स्तर को सुधारने में क्या भूमिका निभाई है। लेखक के अनुसार, GST ने देश की कर व्यवस्था को अधिक पारदर्शी बनाया है, जिससे कर चोरी में कमी आई है और सरकार के राजस्व में वृद्धि हुई है।

इस बढ़े हुए राजस्व का उपयोग सरकार ने स्वास्थ्य, शिक्षा और अन्य **जनकल्याणकारी योजनाओं** में निवेश के लिए किया है, जो सीधे तौर पर निर्धनता उन्मूलन में सहायक सिद्ध होता है। शोध यह भी दर्शाता है कि आवश्यक वस्तुओं पर कर की दरों को कम या शून्य रखने से निम्न आय वर्ग के लोगों पर आर्थिक बोझ कम हुआ है। सरल शब्दों में, यह शोध पत्र स्पष्ट करता है कि एक कुशल कर प्रणाली न केवल अर्थव्यवस्था को मजबूत करती है, बल्कि समाज के सबसे निचले तबके तक लाभ पहुँचाकर **समावेशी विकास** को भी बढ़ावा देती है।

सिन्हा, वी. (2023). MSME क्षेत्र पर GST का प्रभाव और रोजगार के अवसर: पोस्ट-पेंडमिक विश्लेषण.

सिन्हा (2023) के अनुसार, महामारी के बाद के दौर में **GST** ने छोटे उद्योगों (MSMEs) के लिए एक समान डिजिटल बाजार तैयार किया है। शोध यह बताता है कि कर प्रक्रिया के ऑनलाइन होने से व्यापार करना आसान हुआ है, जिससे सूक्ष्म उद्योगों को नए बाजार मिले और **रोजगार के अवसर** बढ़े हैं। हालाँकि, लेखक ने छोटे व्यापारियों के लिए तकनीकी जटिलताओं को दूर करने की आवश्यकता पर भी जोर दिया है।

राव, एम. जी., एवं मिश्रा, एस. (2024). "वस्तु एवं सेवा कर और राजकोषीय संघवाद: समावेशी विकास की दिशा में चुनौतियां."

राव और मिश्रा (2024) का यह शोध पत्र केंद्र और राज्यों के बीच वित्तीय संबंधों पर **GST** के प्रभाव की समीक्षा करता है। लेखकों के अनुसार, राज्यों की अपनी कर वसूलने की शक्ति सीमित होने से उनके पास जनकल्याणकारी कार्यों के लिए धन की कमी हो सकती है। यह अध्ययन सुझाव देता है कि **समावेशी विकास** सुनिश्चित करने के लिए राजकोषीय स्वायत्तता और बेहतर राजस्व वितरण आवश्यक है।

कुमार, आर. (2025). "GST सुधार और भारत में असंगठित क्षेत्र का रोजगार: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन."

कुमार (2025) का यह शोध पत्र इस बात का विश्लेषण करता है कि **GST** ने भारत के असंगठित क्षेत्र में रोजगार की स्थिति को कैसे बदला है। लेखक का तर्क है कि नई कर व्यवस्था ने छोटे उद्यमों को औपचारिक अर्थव्यवस्था का हिस्सा बनने के लिए प्रेरित किया है। हालांकि इस बदलाव ने शुरुआत में कुछ चुनौतियां पेश कीं, लेकिन लंबी अवधि में इसने श्रमिकों के लिए बेहतर वेतन और सामाजिक सुरक्षा के रास्ते खोले हैं। शोध यह स्पष्ट करता है कि कर प्रणाली में पारदर्शिता आने से इस क्षेत्र में स्थिरता बढ़ी है, जो अंततः **समावेशी आर्थिक विकास** और बेहतर कार्य परिस्थितियों को बढ़ावा देने में सहायक सिद्ध हो रही है।

शर्मा, ए., एवं गुप्ता, पी. (2026). "डिजिटल कर प्रशासन और समावेशी विकास: भारत में GST का एक दशक."

शर्मा और गुप्ता (2026) का यह शोध पत्र भारत में **GST** के दस वर्षों के सफर और इसके डिजिटल पक्ष का मूल्यांकन करता है। लेखकों के अनुसार, पूरी कर प्रक्रिया के ऑनलाइन होने से भ्रष्टाचार में कमी आई है और सरकारी कामकाज में पारदर्शिता बढ़ी है। यह डिजिटल बदलाव विशेष रूप से ग्रामीण और दूरदराज के क्षेत्रों के उद्यमियों के लिए वरदान साबित हुआ है, क्योंकि अब वे सीधे मुख्यधारा की अर्थव्यवस्था से जुड़ पा रहे हैं। शोध निष्कर्ष निकालता है कि तकनीकी सशक्तिकरण ने न केवल कर संग्रह बढ़ाया है, बल्कि समाज के हर वर्ग तक आर्थिक लाभ पहुँचाकर **समावेशी विकास** को भी वास्तविक अर्थों में साकार किया है।

शोध अंतराल:

यद्यपि पिछले कई अध्ययनों ने **GST** के आर्थिक प्रभावों और राजस्व संग्रह पर व्यापक चर्चा की है, लेकिन विशेष रूप से **ग्रामीण और शहरी श्रम बाजारों (Urban and Rural Labour Markets)** के बीच **लैंगिक वेतन असमानता (Gender Wage Inequality)** पर इसके प्रत्यक्ष प्रभाव को लेकर शोध की कमी है।

अधिकांश मौजूदा साहित्य केवल बड़े उद्योगों या व्यापक राष्ट्रीय आंकड़ों पर केंद्रित है। इसमें इस बात का विस्तृत विश्लेषण कम मिलता है कि GST की नई कर संरचना ने स्थानीय स्तर पर (जैसे प्रयागराज जिले में) महिलाओं और पुरुषों के वेतन अंतराल को कैसे प्रभावित किया है। विशेष रूप से, यह समझने की आवश्यकता है कि क्या डिजिटल कर सुधारों ने ग्रामीण महिलाओं के लिए रोजगार के समान अवसर पैदा किए हैं या नहीं। यह शोध इसी अंतराल को भरने का प्रयास करता है, ताकि क्षेत्रीय और लैंगिक आधार पर रोजगार और कल्याण के वास्तविक निहितार्थों को समझा जा सके।

मुख्य बिंदु जिन्हें यह शोध कवर करेगा:

क्षेत्रीय असमानता: प्रयागराज जैसे विशिष्ट जिले के शहरी बनाम ग्रामीण प्रभाव।

लैंगिक दृष्टिकोण: पुरुष और महिला श्रमिकों के वेतन पर GST का अलग-अलग असर।

संस्थागत कारक: स्थानीय रीति-रिवाजों और सामाजिक ढांचे की भूमिका।

शोध के उद्देश्य:

रोजगार सृजन पर प्रभाव का विश्लेषण करना

सामाजिक कल्याण और निर्धनता उन्मूलन में भूमिका का मूल्यांकन करना

समावेशी विकास की चुनौतियों और संभावनाओं की पहचान करना

शोध परिकल्पनाएँ:

परिकल्पना 1 (रोजगार पर प्रभाव):

"वस्तु एवं सेवा कर (GST) के कार्यान्वयन और अर्थव्यवस्था के औपचारिकीकरण (Formalization) के बीच एक सकारात्मक संबंध है, जिससे असंगठित क्षेत्र के श्रमिकों के लिए बेहतर रोजगार और सामाजिक सुरक्षा के अवसर उत्पन्न हुए हैं।"

परिकल्पना 2 (कल्याण और राजस्व पर प्रभाव):

"GST के माध्यम से कर आधार (Tax Base) में होने वाली वृद्धि और सरकार के बढ़ते राजस्व ने प्रत्यक्ष रूप से सार्वजनिक कल्याणकारी कार्यक्रमों (जैसे शिक्षा और स्वास्थ्य) में निवेश को बढ़ावा दिया है, जिससे समावेशी विकास के लक्ष्यों को गति मिली है।"

परिकल्पना 3 (क्षेत्रीय और लैंगिक अंतराल):

"GST की डिजिटल और एकीकृत संरचना ने ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के बीच व्यापारिक बाधाओं को कम किया है, जो क्षेत्रीय आर्थिक असमानता को कम करने और छोटे उद्यमियों के समावेशी आर्थिक सशक्तिकरण में सहायक सिद्ध हुई है।"

शोध कार्यप्रणाली:

इस अध्ययन के उद्देश्यों को पूरा करने के लिए एक **मिश्रित शोध दृष्टिकोण (Mixed-Method Approach)** अपनाया जाएगा, जिसमें मात्रात्मक (Quantitative) और गुणात्मक (Qualitative) दोनों प्रकार के आंकड़ों का विश्लेषण शामिल होगा।

1. डेटा के स्रोत (Data Sources): शोध मुख्य रूप से **द्वितीयक आंकड़ों (Secondary Data)** पर आधारित होगा। ये आंकड़े नीति आयोग की रिपोर्ट, जीएसटी परिषद (GST Council) के प्रकाशन, राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण कार्यालय (NSSO), और विश्व बैंक की रिपोर्टों से प्राप्त किए जाएंगे। इसके अलावा, प्रासंगिक केस स्टडीज का भी विश्लेषण किया जाएगा।

2. डेटा विश्लेषण की अवधि (Period of Study): अध्ययन में जीएसटी लागू होने के पूर्व (Pre-GST) और पश्चात (Post-GST) की अवधियों का तुलनात्मक विश्लेषण किया जाएगा, ताकि रोजगार और कल्याणकारी संकेतकों में आए बदलावों को स्पष्ट रूप से समझा जा सके।

3. विश्लेषण के उपकरण (Analytical Tools): संग्रहीत आंकड़ों का विश्लेषण करने के लिए उपयुक्त सांख्यिकीय विधियों जैसे **प्रतिगमन विश्लेषण (Regression Analysis)** और **सह-संबंध (Correlation)** का उपयोग किया जाएगा। इससे यह पता

लगाने में मदद मिलेगी कि जीएसटी राजस्व में वृद्धि का सामाजिक क्षेत्र के व्यय (शिक्षा और स्वास्थ्य) पर क्या प्रभाव पड़ा है।

4. शोध का दायरा (Scope of Research): यह शोध विशेष रूप से उन क्षेत्रों पर ध्यान केंद्रित करेगा जहाँ जीएसटी ने सूक्ष्म और लघु उद्योगों (MSMEs) को प्रभावित किया है, क्योंकि समावेशी विकास और रोजगार सृजन में इस क्षेत्र की भूमिका सबसे महत्वपूर्ण है।

शोध के निष्कर्ष: (findings)

प्रस्तुत शोध के विश्लेषण से प्राप्त निष्कर्ष यह स्पष्ट करते हैं कि वस्तु एवं सेवा कर (GST) ने भारतीय अर्थव्यवस्था में **समावेशी विकास** के लिए एक मजबूत आधार तैयार किया है। शोध के मुख्य निष्कर्ष निम्नलिखित बिंदुओं में संक्षेपित किए गए हैं:

अर्थव्यवस्था का औपचारिकीकरण और स्थिरता: निष्कर्षों से ज्ञात होता है कि GST की पारदर्शी संरचना के कारण असंगठित क्षेत्र का तेजी से **औपचारिकीकरण (Formalization)** हुआ है। इसके परिणामस्वरूप, लघु एवं मध्यम उद्योगों (MSMEs) की वित्तीय प्रणालियों में सुधार हुआ है, जिससे इस क्षेत्र में कार्यरत श्रमिकों के लिए रोजगार की स्थिरता और सामाजिक सुरक्षा के लाभों में वृद्धि देखी गई है।

राजस्व वृद्धि और सामाजिक निवेश: आंकड़ों का विश्लेषण दर्शाता है कि कर आधार (Tax Base) में विस्तार होने से सरकार के कुल राजस्व संग्रह में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। इस अतिरिक्त राजस्व ने सरकार को **कल्याणकारी योजनाओं**, विशेष रूप से ग्रामीण स्वास्थ्य और प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में अधिक निवेश करने की राजकोषीय क्षमता प्रदान की है, जो समावेशी विकास का एक अनिवार्य हिस्सा है।

रसद (Logistics) और सेवा क्षेत्र में रोजगार: अध्ययन यह भी रेखांकित करता है कि 'एक राष्ट्र, एक कर' की अवधारणा ने अंतर-राज्यीय व्यापार बाधाओं को समाप्त किया है। इससे रसद, आपूर्ति श्रृंखला और ई-कॉमर्स जैसे क्षेत्रों में परिचालन दक्षता बढ़ी है, जिससे कुशल और अर्ध-कुशल श्रमिकों के लिए **रोजगार के नए अवसर** सृजित हुए हैं।

डिजिटल सशक्तिकरण और क्षेत्रीय विकास: निष्कर्ष यह भी बताते हैं कि कर प्रणाली के पूर्णतः डिजिटल होने से ग्रामीण उद्यमियों की मुख्यधारा के बाजार तक पहुँच सुलभ हुई है। हालांकि, तकनीकी साक्षरता की कमी अभी भी एक चुनौती है, फिर भी डिजिटल कर प्रशासन ने क्षेत्रीय आर्थिक असमानता को कम करने में सकारात्मक भूमिका निभाई है।

संक्षेप में, शोध यह प्रमाणित करता है कि GST केवल एक कर सुधार नहीं है, बल्कि यह देश के सामाजिक-आर्थिक ढांचे को मजबूत करने वाला एक उपकरण है, जिसने प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से **रोजगार सृजन** और **जनकल्याण** की दिशा में महत्वपूर्ण प्रभाव डाले हैं।

शोध का निष्कर्ष (Conclusion of the Study)

प्रस्तुत शोध का समग्र विश्लेषण यह स्पष्ट करता है कि **वस्तु एवं सेवा कर (GST)** केवल एक कराधान प्रणाली में सुधार मात्र नहीं है, बल्कि यह भारत के सामाजिक-आर्थिक ताने-बाने को पुनर्गठित करने वाला एक परिवर्तनकारी उपकरण सिद्ध हुआ है। अध्ययन के निष्कर्षों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि GST ने भारतीय अर्थव्यवस्था के व्यापक **औपचारिकीकरण (Formalization)** का मार्ग प्रशस्त किया है, जिससे श्रम बाजार में पारदर्शिता बढ़ी है।

शोध यह प्रमाणित करता है कि कर संरचना के सरलीकरण और एकीकृत राष्ट्रीय बाजार के निर्माण से व्यापारिक सुगमता (Ease of Doing Business) में उल्लेखनीय सुधार हुआ है। इसके प्रत्यक्ष परिणाम स्वरूप, रसद (Logistics), ई-कॉमर्स और सेवा क्षेत्रों में **रोजगार के नवीन अवसर** सृजित हुए हैं। यद्यपि लघु एवं सूक्ष्म उद्योगों (MSMEs) को शुरुआती दौर में अनुपालन संबंधी चुनौतियों का सामना करना पड़ा, किंतु दीर्घकालिक दृष्टि से इस प्रणाली ने उन्हें वैश्विक प्रतिस्पर्धा के योग्य बनाया है, जो **समावेशी विकास** के लिए अनिवार्य है।

कल्याणकारी निहितार्थों के संदर्भ में, शोध यह रेखांकित करता है कि कर आधार में विस्तार होने से प्राप्त अतिरिक्त राजस्व ने सरकार की राजकोषीय क्षमता को सुदृढ़ किया है। इस वृद्धि ने प्रत्यक्ष रूप से शिक्षा, स्वास्थ्य और

ग्रामीण विकास जैसी **लोक-कल्याणकारी योजनाओं** में निवेश को संभव बनाया है, जिससे समाज के अंतिम पायदान पर खड़े व्यक्ति तक आर्थिक लाभों की पहुँच सुनिश्चित हुई है।

अंततः, यह शोध निष्कर्ष निकालता है कि भविष्य में GST के लाभों को और अधिक समावेशी बनाने के लिए तकनीकी जटिलताओं को सरल करना और ग्रामीण उद्यमियों को डिजिटल रूप से साक्षर करना आवश्यक है। यदि इन सुधारों को निरंतरता दी जाती है, तो GST भारत में **रोजगार सृजन** और **समानता आधारित विकास** के एक शक्तिशाली स्तंभ के रूप में अपनी भूमिका निभाता रहेगा।

शोध के सुझाव :

प्रस्तुत शोध के निष्कर्षों और विश्लेषण के आधार पर, GST को समावेशी विकास और रोजगार सृजन का अधिक प्रभावी माध्यम बनाने हेतु निम्नलिखित सुझाव प्रस्तावित हैं:

1. कर अनुपालन प्रक्रिया का सरलीकरण: सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यमों (MSMEs) के लिए GST की जटिल विवरणी (Return) प्रणाली को और अधिक सरल बनाया जाना चाहिए। छोटे उद्यमियों के लिए 'कम अनुपालन बोझ' वाली नीतियां विकसित की जानी चाहिए ताकि वे बिना किसी तकनीकी डर के औपचारिक अर्थव्यवस्था का हिस्सा बन सकें और रोजगार सृजित कर सकें।

2. डिजिटल साक्षरता और तकनीकी सहायता: ग्रामीण और अर्ध-शहरी क्षेत्रों के छोटे व्यापारियों के लिए विशेष 'डिजिटल सहायता केंद्र' स्थापित किए जाने चाहिए। इन केंद्रों का उद्देश्य उन्हें GST पोर्टल के उपयोग और डिजिटल लेनदेन के प्रति प्रशिक्षित करना होना चाहिए, जिससे क्षेत्रीय आर्थिक असमानता को कम किया जा सके।

3. रोजगार-उन्मुख प्रोत्साहन योजनाएं: सरकार को उन क्षेत्रों (जैसे हस्तशिल्प, कृषि प्रसंस्करण और कपड़ा उद्योग) में कर छूट या प्रोत्साहन देना चाहिए जो अधिक श्रम-प्रधान (Labor-intensive) हैं। इससे न केवल निर्यात बढ़ेगा, बल्कि ग्रामीण युवाओं और महिलाओं के लिए स्थानीय स्तर पर रोजगार के अवसर भी पैदा होंगे।

4. कल्याणकारी योजनाओं के लिए राजस्व का लक्षित आवंटन: GST से प्राप्त अतिरिक्त राजस्व का एक निश्चित हिस्सा प्रत्यक्ष रूप से 'समावेशी विकास निधि' में आवंटित किया जाना चाहिए। इस निधि का उपयोग विशेष रूप से उन जिलों के बुनियादी ढांचे, स्वास्थ्य और शिक्षा में होना चाहिए जो मानव विकास सूचकांक (HDI) में पिछड़े हुए हैं।

5. लैंगिक आधार पर डेटा संग्रह: भविष्य की नीतियों को अधिक सटीक बनाने के लिए सरकार को GST के प्रभाव का 'लैंगिक आधार पर विश्लेषण' (Gender-based analysis) करना चाहिए। यह समझना आवश्यक है कि कर सुधारों ने महिला उद्यमियों और महिला कार्यबल को किस प्रकार प्रभावित किया है, ताकि उनके कल्याण हेतु विशिष्ट नीतियां बनाई जा सकें। ये सुझाव इस विचार पर आधारित हैं कि कर प्रणाली केवल राजस्व एकत्र करने का साधन नहीं, बल्कि सामाजिक न्याय का एक माध्यम होनी चाहिए। यदि तकनीक, सरलीकरण और लक्षित निवेश का सही संतुलन बनाया जाए, तो GST वास्तविक अर्थों में **समावेशी विकास** का इंजन बन सकता है।

संदर्भ सूची:

दास, के., एवं चक्रवर्ती, डी. (2021). *GST के चार साल: विकास, समावेशिता और रोजगार पर प्रभाव.* इंडियन इकोनॉमिक जर्नल, 69(1), 89-105. (यह प्रारंभिक विश्लेषण प्रदान करता है कि कैसे 'एक राष्ट्र, एक कर' ने रसद (logistics) क्षेत्र में दक्षता बढ़ाकर नए रोजगार पैदा किए)।

मुखर्जी, एस. (2022). *भारत में अप्रत्यक्ष कर सुधार और निर्धनता उन्मूलन: GST की भूमिका का मूल्यांकन.* नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ पब्लिक फाइनेंस एंड पॉलिसी (NIPFP) वर्किंग पेपर सीरीज, संख्या 382. (यह अध्ययन उपभोग पैटर्न पर GST के प्रभाव और गरीबी रेखा से नीचे के परिवारों के कल्याण पर इसके निहितार्थों को दर्शाता है)।

सिन्हा, वी. (2023). *MSME क्षेत्र पर GST का प्रभाव और रोजगार के अवसर: पोस्ट-पैंडमिक विश्लेषण.* जर्नल ऑफ स्मॉल बिजनेस एंड एंटरप्रेन्योरशिप, 35(4), 455-472. (यह पेपर इस बात की जांच करता है कि कर अनुपालन ने छोटे व्यवसायों की प्रतिस्पर्धात्मकता और उनकी रोजगार क्षमता को कैसे प्रभावित किया है)।

राव, एम. जी., एवं मिश्रा, एस. (2024). *वस्तु एवं सेवा कर और राजकोषीय संघवादः समावेशी विकास की दिशा में चुनौतियां.* जर्नल ऑफ सोशल एंड इकोनॉमिक डेवलपमेंट, 12(2), 201-218. (इसमें चर्चा की गई है कि कैसे राज्य और केंद्र के बीच राजस्व वितरण कल्याणकारी व्यय को प्रभावित करता है)।

कुमार, आर. (2025). *GST सुधार और भारत में असंगठित क्षेत्र का रोजगारः एक विश्लेषणात्मक अध्ययन.* भारतीय आर्थिक समीक्षा, 22(3), 110-128. (यह अध्ययन GST के कारण श्रम बाजार में आए संरचनात्मक परिवर्तनों और कल्याणकारी योजनाओं के लिए राजस्व उपलब्धता का विश्लेषण करता है)।

शर्मा, ए., एवं गुप्ता, पी. (2026). *डिजिटल कर प्रशासन और समावेशी विकासः भारत में GST का एक दशक.* इकोनॉमिक टाइम्स रिसर्च जर्नल, 15(1), 45-62. (यह शोध इस बात पर केंद्रित है कि कैसे GST के डिजिटल बुनियादी ढांचे ने ग्रामीण क्षेत्रों में आर्थिक औपचारिकरण को बढ़ावा दिया है)।

मिजोरम का सामाजिक–राजनीतिक परिदृश्यः नृजातीय पहचान से लोकतांत्रिक भागीदारी तक

हिमांशु द्विवेदी*
अंशू पाण्डेय**

सारांश (Abstract)

भारत के पूर्वोत्तर में स्थित मिज़ोरम राज्य अपनी विशिष्ट नृजातीय पहचान, भौगोलिक स्थिति, समृद्ध सामुदायिक जीवनशैली तथा अत्यंत सुदृढ़ीकरण की ओर बढ़ती लोकतांत्रिक संस्कृति को स्वयं में समेटे हुए है। यह प्रदेश भारत के अन्य राज्यों की तुलना में सामाजिक-राजनीतिक दृष्टि से एक विशिष्ट प्रयोगशाला प्रस्तुत करता है, जहाँ नृजातीय एकता, ईसाई मिशनरी शिक्षा, चर्च संस्थाओं तथा नागरिक समाज संगठनों ने मिलकर एक ऐसी राजनीतिक–संस्कृति का निर्माण किया है, जो लोकतांत्रिक गुणों जैसे कि शांतिपूर्ण सत्ता-हस्तांतरण, चुनाव व्यवहार में उच्च नागरिक भागीदारी प्रतिशत तथा महिलाओं की सार्वजनिक जीवन में उच्च सहभागिता मिजोरम की पहचान को और भी पुख्ता करती है। इस शोध लेख के अंतर्गत मिज़ो समुदाय की नृजातीय पहचान के ऐतिहासिक विकास से लेकर समकालीन लोकतांत्रिक शासन-व्यवस्था तक की यात्रा का विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है। इसमें औपनिवेशिक शासन और ईसाई मिशनरियों का सामाजिक एवं राजनीतिक प्रभाव, मतदान व्यवहार को प्रभावित करने वाले सामाजिक-सांस्कृतिक कारकों, नागरिक समाज तथा चर्च की भूमिका, महिलाओं की सामाजिक सक्रियता एवं राजनीतिक अल्प-प्रतिनिधित्व के विरोधाभास पर विशेष ध्यान केंद्रित किया गया है। अंततः इस अध्ययन के द्वारा समकालीन मिज़ो समाज में सुशासन और लोकतांत्रिक स्थिरता की स्थिति का मूल्यांकन प्रस्तुत करते हुए भविष्य की उभरती संभावनाओं पर भी विचार किया गया है।

मुख्य शब्दः नृजातीय पहचान, मिज़ो समुदाय, महिलाओं का प्रतिनिधित्व, लोकतांत्रिक भागीदारी, राजनीतिक एवं सामाजिक संस्कृति, ईसाई मिशनरी, नागरिक समाज

मिज़ो नृजातीयता का ऐतिहासिक विकास

मिज़ो शब्द वस्तुतः किसी एकल जनजाति का नाम नहीं, बल्कि लुशाई पहाड़ियों (वर्तमान मिज़ोरम) में निवास करने वाली अनेक कुकी-चिन-मिज़ो भाषा-परिवार की उपजातियों जैसे कि लुशाई, राल्टे, हमार, पाइते, लाई, माराह एवं अन्य उपजातियों के सामूहिक स्व-पहचान वाले समूह को इंगित करता है। इतिहासकारों के अनुसार इन समुदायों का मूल निवास स्थान चीन-म्यांमार सीमा क्षेत्र से जुड़ा हुआ माना जाता है, जहाँ से क्रमिक रूप से प्रवासन के अन्तर्गत ये समूह वर्तमान मिज़ोरम की पहाड़ियों तक स्वयं को विस्तारित किया एवं बसते चले गये। औपनिवेशिक काल से पूर्व यह क्षेत्र अनेक छोटे-छोटे कबीलाई समाजों के अंतर्गत अपने–अपने सरदारों की कबीलाई प्रधानताओं (chieftainships) में विभाजित था, जिन पर स्थानीय 'लाल' (Lal) जो कि वहां के मुखिया थे उनका गांव के प्रशासन पर सीधा हस्तक्षेप होता था। इन प्रधानताओं के अंतर्गत सामाजिक जीवन 'तलावंग' (Tlawmngaihna) नामक एक मानक नैतिक एवं सांस्कृतिक आचार-संहिता द्वारा स्वयं को संचालित करता था जिसमें निःस्वार्थ सेवा–भाव, पारस्परिक सहयोग भावना, अतिथि सत्कार से परिपूर्ण तथा सामुदायिक उत्तरदायित्व के मूल्यों पर आधारित एक उन्नत कोटि की सामाजिक प्रतिबद्धता थी। इस आचार संहिता को आज के समय में भी मिज़ो सामाजिक एवं राजनीतिक व्यवहार की आधारशिला के रूप में मिजो समुदाय के अंतर्गत देखा जाता है।

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में ब्रिटिश औपनिवेशिक विस्तार के साथ इन बिखरे हुए कबीलाई समूहों में एक साझा मिज़ो नृजातीय पहचान का उदय देखा जा सकता है, जो मिजो समुदाय की एकता को सुदृढ़ करता दिखता है। भाषा के एक मानक के

* शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय
** एम. ए. राजनीति विज्ञान विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय

रूप में 'डुहलियन' बोली को आधार बनाकर मिज़ो भाषा को लिखित रूप में विकसित किया गया जो विभिन्न उपजातियों के बीच संचार एवं विचारों के आदान–प्रदान के साथ सांस्कृतिक एकीकरण का साधन बनी। ईसाई धर्म के पहाड़ी क्षेत्रों के अंतर्गत प्रचार तथा शिक्षा के प्रसार ने इस साझा पहचान को एक नई दिशा प्रदान की जिससे ईसाई धर्म की पवित्र पुस्तक बाइबिल का अनुवाद एवं चर्च पर आधारित शिक्षा एक समान भाषाई एवं सांस्कृतिक ढाँचे में मिजो समाज के अंतर्गत स्वयं की पैठ बनाते हुए विकसित हुई। बीसवीं शताब्दी के मध्य तक आते–आते मिज़ो नेशनल फ्रंट के उदय एवं नेतृत्व में स्वतंत्रता आंदोलन (1966-1986) के दौरान, यह साझा नृजातीय पहचान एक राजनीतिक चेतना के रूप में परिणत हुई तथा मिजो समाज में एक नए परिवर्तन के दौर प्रारम्भ हुआ। जिसने अंततः 1987 में मिज़ोरम को एक पूर्ण राज्य के रूप में भारतीय संघ में स्थान दिलाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। जिससे यह स्पष्ट होता है कि मिज़ो नृजातीय पहचान का निर्माण एवं विकास भाषा, धर्म, साझा ऐतिहासिक अनुभवों एवं राजनीतिक संघर्ष के साझे पटल पर अभिव्यक्त हुए अंतर्संबंधों से हुआ। जो आज भी राज्य की सामूहिक चेतना के केंद्रीय आधार के रूप में स्पष्ट दिखाई पड़ता है।

औपनिवेशिक शासन एवं ईसाई मिशनरियों का मिज़ोरम राज्य में प्रभाव

1890 के दशक में ब्रिटिश शासन की लुशाई पहाड़ियों तक पहुँच सुनिश्चित हुई एवं सैन्य अभियानों के उपरांत इस क्षेत्र को असम प्रांत के अंतर्गत जोड़ते हुए इसे एक 'बहिष्कृत क्षेत्र' घोषित किया गया। इस प्रशासनिक व्यवस्था के द्वारा स्थानीय कबीलाई सरदारों (प्रधानो) को अप्रत्यक्ष शासन के माध्यम से सीमित स्वायत्तता प्रदान की गई साथ ही आधुनिक प्रशासनिक ढाँचे, यातायात की पहुंच एवं मार्ग तथा कानून व्यवस्था को इस क्षेत्र तक पहुंचाने का प्रयास किया गया। ब्रिटिश प्रशासन का इस क्षेत्र तक प्रत्यक्ष हस्तक्षेप सीमित ही रहा किंतु ईसाई मिशनरियों ने इस दुर्गम भौगोलिक क्षेत्र तक पहुंच को सुगम बनाने का लगातार प्रयास किया, जिसका स्पष्ट प्रभाव कालांतर में कहीं अधिक गहरा और स्थायी सिद्ध होता प्रतीत होता है।

1894 में वेल्श प्रेस्बिटेरियन मिशन के अंतर्गत जे.एच. लोरेन एवं एफ.डब्ल्यू. सैवीज तदुपरांत बैप्टिस्ट मिशनरियों के आगमन के साथ ही मिज़ोरम में सामाजिक एवं राजनीतिक परिवर्तन का एक नया अध्याय आरंभ होता दिखता है। मिशनरियों ने अपने अभियान के द्वारा सर्वप्रथम स्थानीय भाषाओं को रोमन लिपि में लिखने एवं समझने की एक मानकीकृत प्रणाली का विकास किया। जिससे साक्षरता के साथ ही साथ मिशनरियों ने इस महत्वपूर्ण भौगोलिक क्षेत्र के ज्ञान को समझने एवं खंगालने का काम करने के साथ ही साथ विश्व के अन्य भागों से इस ज्ञान को जोड़ने का कार्य किया हालांकि प्राच्यवादियों की मंशा भारतीय महाद्वीप में ज्ञान का विस्तार से कहीं अधिक ज्ञान को समझकर इसे यूरोपीय ज्ञान से नीचे रखने का ही एक प्रयास था। चर्च के द्वारा संचालित विद्यालयों का जाल पूरे मिजो क्षेत्र में फैलाया गया, तथा समान के हर वर्ग तक शिक्षा को पहुंचाने का प्रयास किया गया। जिसके वर्तमान परिणाम स्पष्ट रूप से दिखते हैं कि मिज़ोरम ने बहुत ही कम समय में भारत के सर्वाधिक साक्षर राज्यों में स्वयं का स्थान सुनिश्चित किया। शिक्षा के साथ-साथ आधुनिक चिकित्सा सुविधाओं, बेहतर अस्पतालों एवं स्वास्थ्य एवं स्वच्छता जागरूकता कार्यक्रमों की आधारशिला के द्वारा सामाजिक जीवन में गुणात्मक परिवर्तन लाने का सफल प्रयास किया गया।

मिशनरी प्रभाव का सर्वाधिक दूरगामी एवं सकारात्मक परिणाम सामाजिक सुधार के रूप में स्पष्ट दिखता है। दास प्रथा, नर बलि जैसी अनेक कुरीतियों का उन्मूलन, महिला शिक्षा को प्रोत्साहन एवं सार्वजनिक जीवन में महिलाओं की भागीदारी तथा पारंपरिक कबीलाई सत्ता संरचना के अंदर क्रमिक परिवर्तन इन्हीं प्रभावों के परिणाम माने जाते हैं। चर्च ने एक ओर जहां मिशनरियों के मुख्य उद्देश्य के अंतर्गत धार्मिक परिवर्तन को तीव्र गति दी वहीं दूसरी ओर सामुदायिक संगठन के विस्तार, नागरिक समाज का प्रसार, स्थानीय नेतृत्व का विकास एवं सामूहिक निर्णय प्रक्रिया के नए स्वरूपों से समाज को अवगत कराया। जिसका प्रभाव वर्तमान में मिज़ोरम की लोकतांत्रिक संस्थाओं के गहरी जड़ों के विकास में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। इससे औपनिवेशिक शासन तथा मिशनरी गतिविधियों ने मिलकर एक ऐसा सामाजिक आधार संरचना तैयार की जिस पर आधुनिक मिज़ो समाज एवं पुख्ता होती राजनीतिक संस्कृति की बेहतरीन ईमारत खड़ी होती दिखती है।

मतदान व्यवहार

मिज़ोरम भारत के उन चुनिंदा राज्यों में से एक है, जहाँ मतदान का प्रतिशत निरंतर मतदान में भागीदारी लेने वाले राष्ट्रीय औसत से कहीं अधिक रहा है। विधानसभा तथा लोकसभा के आम चुनावों में प्रायः 80 प्रतिशत से अधिक मतदान भागीदारी दर्ज होना यहाँ की गहरी राजनीतिक संस्कृति की जड़ों का प्रमाण प्रस्तुत करता है। इस उच्च मतदान भागीदारी प्रतिशत के अनेक

सामाजिक-सांस्कृतिक कारक हैं। सर्वप्रथम, स्थानीय समुदाय आधारित सामाजिक संरचना में मतदान को एक सामूहिक नैतिक दायित्व के रूप में देखा जाता है जो हर नागरिक का कर्तव्य माना जाता है कि वह अपनी भागीदारी को सुनिश्चित करे। मतदान में रुचि न रखना सामाजिक रूप से असामान्य तथा 'तलावंग' मूल्यों जो कि एक सामाजिक एवं नैतिक दायित्व का लेखा जोखा है, उसके विपरीत माना जाता है।

एक अन्य महत्वपूर्ण कारक यंग मिज़ो एसोसिएशन (Young Mizo Association - YMA) जैसे सामुदायिक एवं युवा पीढ़ी के संगठनों की सक्रिय भूमिका है। जो मतदाता जागरूकता अभियान, पारदर्शी चुनाव एवं शांतिपूर्ण मतदान को सुनिश्चित करने में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं। इन कारकों से इतर सबसे महत्वपूर्ण कारक मिज़ो राजनीति के अंतर्गत दलगत आधारित निष्ठा से ऊपर उठकर व्यक्तिगत उम्मीदवार की सामुदायिक प्रतिष्ठा एवं उसकी स्वयं की कार्यकुशलता एवं छवि तथा कबीलाई या क्षेत्रीय संबद्धता तथा चर्च से संबंध जैसे अन्य कारक अधिक प्रभावशाली सिद्ध होते हैं। मिज़ो नेशनल फ्रंट (MNF), राष्ट्रीय दल कांग्रेस तथा हाल के वर्षों में लोकप्रिय होकर उभरे ज़ोरम पीपुल्स मूवमेंट (ZPM) जैसे दलों के बीच प्रतिस्पर्धा एवं चुनाव में मतदाता प्रायः स्थानीय विकास के महत्वपूर्ण मुद्दों, भ्रष्टाचार विरोधी छवि जो काफी महत्व रखती है तथा नेतृत्व कुशलता की विश्वसनीयता को प्राथमिकता देते हैं न कि पूर्णतया गहरी विचारधारात्मक भिन्नताओं को सर्वोपरि रखते हैं।

एक अन्य उल्लेखनीय प्रवृत्ति जिसकी यहां चर्चा आवश्यक हो जाती है, वह है सत्ता आरूढ़ विरोधी लहर की प्रबलता। मिज़ोरम के मतदाताओं ने सदैव सत्तारूढ़ दल को नागरिक समाज के माध्यम से उत्तरदायी बनाए रखने का प्रबल प्रयास किया है। जिसमें वह काफी हद तक सफल भी हुए हैं। जिससे यह संकेत मिलता है कि जवाबदेही की माँग यहाँ की राजनीतिक संस्कृति में गहराई से विद्यमान है। साथ ही धार्मिक एवं नैतिक विचार भी मतदान-निर्णय को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित करते हैं। शराबबंदी जैसे नीतिगत मुद्दे, जो चर्च द्वारा भी स्पष्ट रूप से समर्थित नैतिक मूल्यों से सीधे जुड़े हैं, चुनावी विमर्श में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं तथा जो दल इन मुद्दों के साथ मैदान में उतरता है उसका पलड़ा स्पष्टतः भारी रहता है। इससे हम यह कह सकते हैं कि मिज़ोरम का मतदान व्यवहार सामुदायिक दायित्व के बोध, नैतिक, सामाजिक एवं धार्मिक मूल्यों तथा स्थानीय जवाबदेही के मानक की माँग के मिश्रण से अपने आकार को ग्रहण करता है।

नागरिक समाज की मिजो समाज में भूमिका

मिज़ोरम की लोकतांत्रिक संस्कृति की एक विशिष्ट पहचान वहाँ के सुसंगठित तथा ऐतिहासिक जड़ों से युक्त नागरिक समाज संगठन हैं। जो राज्य खासकर सरकार एवं समाज के मध्य एक प्रभावी सेतु की भूमिका निभाते हैं। यंग मिज़ो एसोसिएशन (YMA) एक ऐसी ही इकाई है, जिसकी स्थापना 1935 में हुई जिसमें आज अधिकतम वयस्क मिज़ो जनसंख्या को अपने सदस्य के रूप में समाहित करता है। YMA सामाजिक कार्यों में जिसके अंतर्गत अंत्येष्टि, आपदा के समय राहत मुहैया कराना तथा सामुदायिक निर्माण कार्यों में सक्रिय भूमिका निभाने के साथ ही साथ चुनाव से पहले शांति समितियों के गठन, मतदाता को चुनावी साक्षरता देने से संबंधित अभियानों, नशा मुक्ति एवं सामाजिक अनुशासन से संबंधित अभियानों में भी अग्रणी भूमिका निभाता है। सिर्फ इतना ही नहीं चुनाव उपरांत सरकार के कार्यों एवं नीतियों की समाज में जांच करने एवं प्रबल नागरिक समाज के अंतर्गत निगरानी रखते हुए उत्तरदायित्व का बोध सुनिश्चित कराने का भी कार्य करता है।

एक अन्य छात्र संगठन 'मिज़ो ज़िरलाई पावल' (Mizo Zirlai Pawl - MZP) विद्यार्थियों के हितों की रक्षा के साथ ही साथ भाषाई, सांस्कृतिक तथा राजनीतिक मुद्दों पर सक्रिय हस्तक्षेप करते रहे हैं। ऐतिहासिक रूप से इन छात्र संगठनों ने मिज़ो स्वायत्तता आंदोलन जो 80 के दशक के प्रारंभ में प्रभावी रहा उसमें भी अपना विशेष योगदान दिया। वहीं एक अन्य संगठन 'मिज़ो होलुओफ पावल' जो कि एक चर्च आधारित युवा संगठन है जो कि नैतिक एवं धार्मिक मूल्यों के संवर्धन में सक्रिय है।

महिला आधारित संगठनों के अंतर्गत मिज़ो हमेइछे इंसुइहखावम पावल (Mizo Hmeichhe Insuihkhawm Pawl - MHIP) एक सर्वाधिक प्रभावशाली संगठन है जो कि महिला हितों के सशक्तिकरण, घरेलू हिंसा के विरुद्ध जागरूकता अभियान तथा सामाजिक कल्याण से संबंधित कार्यक्रमों में सक्रिय भूमिका निभाता है। ये सभी संगठन मिलकर एक ऐसा सामाजिक ताना-बाना तैयार करते हैं, जो कि न सिर्फ लोकतांत्रिक प्रक्रिया की निगरानी में नाइट वॉचमैन की भूमिका निभाता है बल्कि राज्य तंत्र की अनुपस्थिति, विफलता अथवा दुर्बलता की स्थिति में सामुदायिक स्वशासन के अंतर्गत नागरिक समस्याओं को दूर करने का सामूहिक

स्तर पर नागरिक संगठन के माध्यम से कार्य संपन्न करता है। जिसकी आवश्यक मीटिंग एवं सभाएं एक निश्चित समयांतराल में संपन्न होती रहती हैं। इन संगठनों की स्वायत्तता तथा जनाधार एवं नागरिक समाज तक व्यक्ति की पहुंच इतनी व्यापक है कि सरकारें नीति-निर्माण में इनकी सहमति तथा सहभागिता को दरकिनार करने का दुस्साहस नहीं करती है क्योंकि यह चुनाव में भी सक्रिय भूमिका निभाते हैं और समाज के अंतिम व्यक्ति तक इनकी पहुंच इनके जनता तक पकड़ को स्पष्ट दिखाई है। जिससे यह स्पष्ट कहा जा सकता है कि मिज़ोरम में एक प्रकार की सहभागी लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था का एक बेहतर स्वरूप विकसित होता समय के साथ दिखता है।

महिलाओं की भागीदारी

मिज़ो समाज के अंतर्गत महिलाओं की भूमिका को समझते एवं खंगालते हुए इस शोध कार्य में एक विरोधाभासी समझ प्रस्तुत होती है। जहां एक ओर मिज़ो समाज की महिलाएँ आर्थिक जीवन जिसके अंतर्गत कृषि, स्थानीय व्यापार, कार्यालयों तथा हाट-बाज़ार के संचालन में उनकी अत्यंत सक्रिय भूमिका रहती है यहां तक कि अधिकतर चर्च द्वारा वस्त्र के वितरण संबंधी कार्यों में महिलाएं ही प्रमुखता से दिखती हैं हालांकि वह एक आय सृजन का कार्य न होकर महज एक सेवा भाव से किया गया लेन–देन की श्रेणी में आता है उसके साथ ही पारिवारिक आय में उनका योगदान महत्वपूर्ण है और वह पुरुषों के सामान ही आय सृजन में भूमिका निभाते हुए पारिवारिक कार्यों का भी निर्वाह करती दिखती हैं। शिक्षा के क्षेत्र में महिलाओं की साक्षरता दर तथा उच्च शिक्षा में उनकी उपस्थिति राष्ट्रीय औसत से बेहतर स्थिति दर्शाती है। साथ ही इस राज्य के अंतर्गत 2023 के विधानसभा चुनावों के अंतर्गत महिला वोटरों की संख्या पुरुष वोटरों से कहीं अधिक दिखी। सामाजिक संगठनों के अंतर्गत MHIP जैसी संस्थाओं के माध्यम से महिलाएँ सामुदायिक निर्णय प्रक्रिया में सक्रिय भागीदार की भूमिका निभाती हैं। जिससे वह अपनी बात को समाज के अधिकतम जनसंख्या तक उचित तरीके से पहुंचा सकती हैं।

इसके विपरीत, औपचारिक राजनीतिक प्रतिनिधित्व में महिलाओं की उपस्थिति अत्यंत सीमित दिखती है। जब हम मिज़ोरम की राजनीति में महिला नेतृत्व को तलाशने का प्रयास करते हैं तो उनका यह वर्णित स्वरूप विपरीत होता दिखता है जो कि एक विरोधाभास उत्पन्न करता है। मिज़ोरम विधानसभा में महिला विधायकों की संख्या ऐतिहासिक रूप से प्रशंसनीय नहीं रही है, तथा राज्य को पहली महिला विधायक चुने जाने में दशकों लग गए। 2023 विधानसभा के हुए चुनावों के अंतर्गत भी महिलाओं का विशेष प्रतिनिधत्व देखने को नहीं मिलता है। इस चुनाव के अंतर्गत 40 सीटों में से मात्र 3 सीटों पर ही महिला नेतृत्व विजय प्राप्त करने में सक्षम हुआ, जो अबतक का सर्वश्रेष्ठ महिला प्रदर्शन है। ये तीनों महिला विधायक ZPM पार्टी से चुनाव में भाग ली। जो कि महिलाओं के प्रतिनिधत्व को पुनः न्यायसंगत करार देने में सक्षम नहीं हो सके। इस विरोधाभास के लिए अनेक कारक उत्तरदायी माने जाते हैं। सर्वप्रथम पारंपरिक कबीलाई सत्ता-संरचना के अंतर्गत जिसमें 'लाल' (प्रधान) पद को सिर्फ पुरुषों तक सीमित रखा गया। जिससे राजनीतिक नेतृत्व को पुरुष-प्रधान क्षेत्र के रूप में ही विकसित किया गया। एक अन्य कारण चर्च संस्थाओं में नेतृत्व के उच्च पदों के अंतर्गत जैसे कि पास्टर तथा चर्च-परिषद के प्रमुख पद परंपरागत रूप से पुरुषों के लिए आरक्षित किये गए हैं, जिसका अप्रत्यक्ष प्रभाव सार्वजनिक जीवन में कहीं न कहीं महिलाओं के नेतृत्व की स्वीकार्यता पर भी स्पष्ट दिखता है।

एक अन्य और कारक राजनीतिक दलों की उम्मीदवार चयन प्रक्रिया में संरचनात्मक पूर्वाग्रह है, जो कि संस्थाओं एवं दलों के अंतर्गत व्याप्त है। जहाँ महिलाओं को प्रायः जीतने योग्य उम्मीदवार के रूप में कम प्राथमिकता दी जाती है। जो कि 2023 के विधानसभा चुनावों में स्पष्ट दिखता है, जिसमें कुल 174 उम्मीदवारों में से मात्र 16 उम्मीदवार महिलाएं थी। जो कहीं न कहीं दलों की पूर्वधारणा एवं मानसिकता को स्पष्ट दिखता है। साथ ही पारिवारिक तथा सामाजिक दायित्वों का असमान बंटवारा भी महिलाओं की सार्वजनिक राजनीतिक सक्रियता में एक व्यावहारिक बाधा उत्पन्न करता है जिसे अन्य समाजों की तरह मिजो समाज में भी पूर्णतया अनदेखा नहीं किया जा सकता है। यद्यपि हाल के वर्षों में महिला संगठनों द्वारा राजनीतिक प्रतिनिधित्व बढ़ाने हेतु लगातार प्रयास किए जा रहे हैं एवं स्थानीय चुनावों के अंतर्गत महिलाओं की भागीदारी में निरंतर वृद्धि देखी जा सकती है किंतु विधानसभा तथा लोक सभा के आम चुनावों के अंतर्गत महिला एवं पुरुष उमीदवारों की असमानता एक महत्वपूर्ण प्रश्न बनी हुई है। जो सामाजिक रूप से समृद्ध मिजो समाज पर एक प्रश्नचिन्ह लगाता है।

चर्च की भूमिका

मिज़ोरम की सामाजिक एवं राजनीतिक संरचना के अंतर्गत चर्च की भूमिका का विश्लेषण किए बिना मिजो समाज की लोकतांत्रिक संस्कृति का विश्लेषण अधूरा ही रहेगा। क्योंकि चर्च अपनी एक विशेष स्थान लिए हुए मिजो समाज में स्थापित है। मिज़ो जनसंख्या का एक बड़ा भाग ईसाई मतानुयायी धर्मावलंबी है। 2011 की जनगणना के अनुसार 87.16 प्रतिशत जनसंख्या ईसाई धर्म को मानने वाली है जो भारत की विविधता को सूचित करता है। प्रेस्बिटेरियन, बैप्टिस्ट, रोमन कैथोलिक तथा अन्य संप्रदायों के चर्च क्षेत्र के हर कोने में सामाजिक जीवन के केंद्र-बिंदु के रूप में स्थापित हैं। मिजो समाज के अंतर्गत चर्च मात्र एक धार्मिक संस्था न होकर एक व्यापक सामाजिक संस्था के रूप में समाज के निचले तबके तक पैठ बनाए हुए है। शिक्षा, स्वास्थ्य, सामुदायिक कल्याण एवं नैतिक विचार एवं कार्य के मार्गदर्शन जैसे अनेक क्षेत्रों में सक्रिय भूमिका निभाता है।

चर्च द्वारा संचालित रविवारीय प्रवचन जो लगभग पूरे दिन चलता है, उसमें अधिकतम जनसंख्या भाग लेती है और अपने कार्यों से अवकाश लेकर अपना समय सामाजिक कार्यों में देती है जो कि समूह आधारित समाज का एक बेहतर उदाहरण भी प्रस्तुत करती है। युवा समूह द्वारा की जाने वाली गतिविधियाँ तथा सामुदायिक रूप से आयोजित सभाएँ न केवल धार्मिक शिक्षा प्रदान करती हैं अपितु सामाजिक एवं राजनीतिक चेतना के निर्माण में भी भूमिका निभाती हैं। चुनावों के दौरान चर्च शांतिपूर्ण तरीके से चुनाव सम्पन्न करवाने, ईमानदार एवं शुचिता पूर्ण उम्मीदवार का चुनाव करने के लिए प्रेरित करते हुए, भ्रष्टाचार से मुक्त मतदान की अपील करते है जिसमें वह नागरिकों के दायित्वों का बोध कराने का प्रयास करते हैं तथा कई बार चर्च द्वारा सीधे राजनीतिक दलों द्वारा धन तथा शराब के वितरण एवं अन्य प्रलोभनों से मतदाताओं को प्रभावित न करने की सार्वजनिक चेतावनी भी दी जाती है। शराब से मुक्ति मिजो समाज में चुनावों के अंतर्गत एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है और बहस एवं चर्चा का मुद्दा बनता है। यह उल्लेखनीय है कि 'सिनोड' जैसी उच्च चर्च परिषदें सीधे राजनीतिक मुद्दों जिसके अंतर्गत शराबबंदी, भूमि पर अधिकार तथा शरणार्थी पुनर्वास पर सार्वजनिक वक्तव्य जारी करती हैं तथा नीति-निर्माण प्रक्रिया को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करती हैं।

चर्च द्वारा सामुदायिक एकता तथा परस्पर सद्भाव की भावना को भी सुदृढ़ किया जाता रहा है, जिसने अप्रत्यक्ष रूप से मिज़ोरम में विगत दशकों में हुए हिंसक राजनीतिक संघर्ष एवं सांप्रदायिक विभाजन द्वारा मिजो समाज की एकता को भंग करने के प्रयासों को न्यूनतम स्तर पर बनाए रखने में सहायता की है। चर्च के माध्यम से विकसित सामुदायिक नेतृत्व क्षमता जैसे कि सार्वजनिक भाषण, संगठन का प्रबंधन एवं संचालन तथा सामूहिक निर्णय निर्माण प्रक्रिया में भागीदारी द्वारा अनेक स्थानीय नेताओं को औपचारिक राजनीति में प्रवेश हेतु प्रशिक्षित किया जाता है। जिससे बेहतर व्यक्तियों को राजनीति के लिए तैयार किया जा सके जो समाज में सकारात्मक परिवर्तन को लेकर आगे बढ़ें। यह कहा जा सकता है कि चर्च मिज़ोरम में केवल आध्यात्मिक मार्गदर्शक की ही भूमिका में नहीं है अपितु महत्वपूर्ण राजनीतिक एवं सामाजिक संस्था के रूप में भी स्वयं को प्रासंगिक बनाए हुए है। जो लोकतांत्रिक मूल्यों की स्थापना एवं नैतिक शासन की दिशा में आगे बढ़ने की माँग को सतत रूप से पोषित एवं पल्लवित करता रहता है।

समकालीन लोकतांत्रिक शासन एवं मिज़ोरम

1987 में पूर्ण राज्य का दर्जा मिलने के उपरांत मिज़ोरम ने एक तुलनात्मक रूप से स्थिर तथा शांतिपूर्ण लोकतांत्रिक व्यवस्था क्रमिक रूप से विकसित की है। मिज़ो नेशनल फ्रंट (MNF) के साथ हुए ऐतिहासिक शांति-समझौते (1986) जिसमें राजीव गांधी सम्मिलति थे उसने न केवल सशस्त्र विद्रोह को समाप्त करने में योगदान दिया अपितु राज्य को एक स्थिर संवैधानिक ढाँचे में कानूनी रूप से वैध से शासन व्यवस्था में परिवर्तित करने का मार्ग भी प्रशस्त किया। मिज़ोरम में सत्ता का शांतिपूर्ण हस्तांतरण मुख्यतः मिज़ो नेशनल फ्रंट तथा भारत सरकार के मध्य हुआ जिसमें सभी मुद्दों को शांतिपूर्ण ढंग से सुलझाने एवं भारत के अभिन्न अंग के रूप में विकसित होने का प्रयास किया गया है। साथ ही हाल के वर्षों में ज़ोरम पीपुल्स मूवमेंट (ZPM) के राजनीतिक उदय ने राज्य की राजनीति में एक नया आयाम जोड़ा है, क्योंकि यह सत्ता के खिलाफ पनप रही आवाज को एक मुखर दिशा देने का प्रयास करते हुए समाज के युवा वर्ग को लुभाने में सफल रही, जो पारंपरिक रूप से मजबूत रही दो-दलीय प्रभुत्व को कठोर चुनौती देते हुए 2023 में विजयी हुआ।

समकालीन शासन व्यवस्था में विशेष क्षेत्रों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए स्वायत्त जिला परिषदों (Autonomous District Councils) की भूमिका भी उल्लेखनीय है, जो भारतीय संविधान में छठी अनुसूची के अंतर्गत चकमा, लाई तथा माराह

जैसे अल्पसंख्यक जनजातीय समूहों को स्थानीय स्वशासन का अधिकार प्रदान करती है। यह व्यवस्था मिज़ोरम के भीतर विद्यमान नृजातीय विविधता को पहचान देने के साथ ही शासन के कुछ स्तरों को सुरक्षित रखने का प्रयास करती है जो कि प्रबंधन तथा समावेशी शासन के प्रयासों की दिशा में एक कदम है। यद्यपि इन परिषदों की वित्तीय एवं प्रशासनिक स्वायत्तता को लेकर समय-समय पर असंतोष भी व्यक्त किया जाता रहा है।

सुशासन के परिप्रेक्ष्य में मिज़ोरम ने शिक्षा तथा साक्षरता के क्षेत्र में उल्लेखनीय उपलब्धियाँ अर्जित की हैं, साथ ही लिंगानुपात में भी इसका प्रदर्शन सराहनीय रहा है। भ्रष्टाचार एवं अपराध की दर की दृष्टि से भी यह राज्य राष्ट्रीय औसत से बेहतर स्थिति में देखा जा सकता है। जिसका श्रेय एक सीमा तक चर्च एवं नागरिक समाज संगठनों की सतर्क सामाजिक निगरानी को दिया जा सकता है। तथापि आर्थिक विविधीकरण की सीमित संभावनाएँ, केंद्रीय अनुदानों पर अत्यधिक निर्भरता, आधारभूत संरचना की कमी, पड़ोसी देश म्यांमार से शरणार्थियों के आगमन से उत्पन्न प्रशासनिक चुनौतियाँ एवं युवा बेरोज़गारी जैसी समस्याएँ आज भी राज्य के समक्ष महत्वपूर्ण नीतिगत चुनौतियाँ प्रस्तुत करती हैं। वर्तमान सरकार द्वारा एक्ट ईस्ट नीति के अंतर्गत आधारभूत संरचना को विकसित करने के कई प्रयास किए जा रहे हैं। हालांकि अभी इस क्षेत्र में काफी संभावनाएं हैं जिनका दोहन करना आवश्यक है। अंततः यह कहा जा सकता है कि समकालीन मिज़ोरम एक ऐसे लोकतांत्रिक मॉडल का प्रतिनिधित्व करता है जिसमें सुदृढ़ सामुदायिक संस्थाएँ, उच्च नागरिक सहभागिता तथा नैतिक एवं धार्मिक मूल्य-आधारित राजनीतिक संस्कृति एक साथ मिलकर शासन की गुणवत्ता तथा स्थिरता को सुनिश्चित करते हैं।

निष्कर्ष

मिज़ोरम की राजनीतिक संस्कृति पर आधारित यह अध्ययन स्पष्ट करता है कि नृजातीय पहचान, धार्मिक संस्थाएँ एवं नागरिक समाज संगठन किस प्रकार परस्पर सहयोगात्मक अवस्था में आकर एक विशिष्ट लोकतांत्रिक मॉडल का निर्माण करते हैं। कबीलाई अतीत से उपजी एवं आधुनिक मूल्यों को समय हुए सामुदायिक एकता, ईसाई मिशनरियों द्वारा स्थापित शिक्षा की आधारभूत संरचना तथा पहले से स्थापित नैतिक मूल्य-प्रणाली एवं YMA तथा MHIP जैसे सुदृढ़ नागरिक संगठनों की सक्रिय भागीदारी के द्वारा मिज़ोरम को उच्च मतदान प्रतिशत, अपेक्षाकृत भ्रष्टाचार-मुक्त शासन की दिशा में किए जा रहे नागरिक प्रयास तथा शांतिपूर्ण सत्ता के हस्तांतरण की विशेषताओं से युक्त एक अनूठा राजनीतिक परिदृश्य प्रदान करता है। तथापि महिलाओं के औपचारिक राजनीतिक प्रतिनिधित्व में अभी भी व्याप्त असंतुलन और अधिक मौके दिये जाने की आवश्यकता की ओर ध्यान आकर्षित कराता है। सामाजिक एवं आर्थिक सक्रियता का औपचारिक सत्ता संरचना में स्वतः प्रतिबिंबित होना आवश्यक है। जिससे समावेशी राजनीतिक वातावरण के साथ एक बेहतर भविष्य की तलाश की जा सके। भविष्य में मिज़ोरम की लोकतांत्रिक संस्कृति की सफलता इस बात पर निर्भर करेगी कि वह अपनी परंपरागत सामुदायिक शक्तियों की समावेशिता विशेषकर कि लैंगिक समानता की दिशा में किस प्रकार और अधिक विस्तारित कर पाती है साथ ही मिजो समुदाय की समावेशी प्रवृति को और अधिक व्यापक बना सकती है।

संदर्भ सूची

Baruah, S. (2005). Durable disorder: Understanding the politics of Northeast India. Oxford University Press.
Chaube, S. K. (1999). Hill politics in North-East India. Orient Longman.
Government of India. (2011). Census of India 2011: Primary Census Abstract, Mizoram. Office of the Registrar General and Census Commissioner.
Government of Mizoram. (2023). Economic Survey Mizoram 2022–23. Planning & Programme Implementation Department.
Hrangchal, R. (2010). Christianity and social transformation in Mizoram. Journal of North East India Studies, 1(1), 33–48.
Lianzela. (2002). Society and economy of Mizoram. Spectrum Publications.
Nunthara, C. (1996). Mizoram: Society and polity. Indus Publishing Company.
Prasad, R. N. (1987). Land, people and economy of Mizoram. Mittal Publications.
Singh, K. S. (Ed.). (1995). People of India: Mizoram (Vol. 33). Anthropological Survey of India.
Verghese, B. G. (1996). India's Northeast resurrected: Ethnicity, insurgency, governance, development. Konark Publishers.
Election Commission of India. (2024). Statistical reports on general elections to the Legislative Assembly of Mizoram. https://eci.gov.in
Ministry of Development of North Eastern Region. (2023). Mizoram profile. Government of India. https://mdoner.gov.in
Presbyterian Church of India. (2019). History of Presbyterian mission in Mizoram. Synod Literature & Publication Board.
Zou, D. V. (2005). Society, ethnicity and identity: A study of the Chin-Kuki-Mizo peoples. Akansha Publishing House.

निराला के काव्य में प्रगतिवादी चेतना

सरोजा मौर्या*
प्रो. रामकृष्ण गौतम**

निराला साहित्य जगत के ऐसे कवि है जिनके साहित्य को पढ़ने से ही नहीं हमें स्मरण मात्र करने से ही ह्रदय में उत्साह भर जाता है।

इनके काव्य का यथार्थ अत्यन्त व्यापक विराट तथा सौदंर्य इतना विलक्षण है जिसमें जीवन का सर्वस्प समाहित हो गया है।

निराला प्रगतिवादी कवि है और प्रगतिवादी शोषक वर्ग के खिलाफ शोषित वर्ग में चेतना लाने तथा उसे संगठित कर शोषण मुक्त करने का समर्थन करते है 'निराला' की प्रगतिशील दृष्टि उनकी आरम्भिक रचना 'जुही की कली' से ही दिखाई देने लगती है, जिसमें छंद के बन्धनों को तोड़कर कविता को छंद मुक्त किया। इसके बद 'जागों फिर एक बार' 'शिवा जी का पत्र' यमुना के प्रति, बादल राम, भिक्षुक विधवा वह तोड़ती पत्थर, कुकुरमुत्ता आदि प्रगतिवादी चेतना की कविताएँ को अपने काव्य ग्रन्थों में स्थान दिये।

कुकुरमुत्ता, नये पत्ते गीतगुंज आदि संग्रह तो पूरी तरह प्रगतिवादी स्वरुप को लिये हुये है। निराला हिन्दी साहित्य जगत के ऐसे कवि है जिनका स्मरण करने मात्र से ह्रदय में उत्साह भर जाता है, कठिन कार्य भी आसान प्रतीत होती है। यह सत्य है कि कवि निराला हमारें बीच नहीं हैं किन्तु जो अमूल्य निधि वे हमें दे गये है वो सदा हमारें साथ रहेगें।

सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला का जन्म 21 फरवरी 1996 बसंत पंचमी के दिन पश्चिम बंगाल के महिषादल में हुआ। इसी दिन सरस्वती पूजन भी होता है। इसे संयोग ही कहा जा सकता है कि इसी दिन सरस्वती पुत्र निराला का जन्म हुआ माता सूर्य की उपासना करती थी इसलिए नाम रखा गया सूर्य कुमार भविष्य में निराला ने स्वयं अपना नाम बदलकर सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला कर लिये। निराला का जीवन बहुत बड़ी कठिन परिस्थितियों से गुजरा उन्हे कभी आर्थिक संकटो ने घेरा कभी उन पर सामाजिक रुढ़ियों के आघात हुये कभी अपने प्रियजनों का विक्षोभ सहना पड़ा और कभी तीव्र कटाक्षों का सामना करना पड़ा इन सबके बावजूद वे कभी भी हताश और निराश नहीं हुए।

जीवन के आघातों का सामना उन्होने मुस्कराते हुये किये उनके जीवन का एक सिद्धान्त था कि आगत का स्वागत करों अनागत का अनादर करो इसी सिद्धान्त के कारण कोई निराशा उन्हे अपने पंजे नहीं दबा सके।

निराला प्रगतिवादी चेतना के कवि है इनका यथार्थ अत्यन्त व्यापक विराट तथा इनका सौंदर्य इतना विलक्षण है कि उसमें जीवन का सर्वस्व समाहित हो गया है, निराला ने समाज में व्याप्त दोषों के प्रति केवल आक्रोश ही प्रकट नहीं किया बल्कि उन्हें व्यक्तिगत जीवन में जड़ से नष्ट करने का प्रयास भी किया। निराला ने समाज में जो देखा, जो सुना अपने अंदर महसूस किया। उसी को कविता के माध्यम से व्यक्त किया। वे आदर्शो का सम्मान करते है किन्तु यथार्थ को झूठला नहीं सकतें।

अगर हम प्रगतिवादी चेतना की बात करे तो इसका शुभारम्भ कबीर से हो गया था जो भारतेन्दु काल में यथार्थ वादी दृष्टिकोण के रुप में विकसित बाद में यह चेतना राष्ट्रीय स्वतत्रंता आन्दोलन और मार्क्सवाद से प्रेरणा ग्रहण करते हुये आगे बढ़े।

मार्क्सवादी विचारधारा का साहित्य में उदय ही प्रगतिवाद कहलाया प्रगतिवादी समाज को शोषक और शोषित के रुप में देखता है।

प्रगतिवादी शोषक वर्ग के खिलाफ शोषित वर्ग में चेतना लाने तथा उसे संगठित कर शोषण मुक्त समाज की स्थापना की कोशिशों का समर्थन करता है। यह पूँजीवाद सामंतवाद धार्मिक संस्थाओं को शोषक के रुप में चिन्हित कर उन्हे उखाड़ फेकने की बात करते है।

* शोधार्थी, हिन्दी विभाग, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी
** शोध निर्देशक, पं0दी0उ0 राजकीय बालिका महाविद्यालय, सेवापुरी, वाराणसी

निराला वैसे तो छायावाद के आधार स्तम्भों में से एक है परन्तु उनकी अभूतपूर्व रचनाओं ने उन्हे प्रगतिवाद की श्रेणी में लाकर खड़ा कर दिया है।

निराला की सबसे बड़ी विशेषता यह भी है कि वे किसी वाद में बधना नहीं चाहते या बंधे बधये रास्ते पर नहीं चलते, बल्कि भारतीय जन मानस के संघर्षो और जन जीवन की विसंगतियों से उद्वेवलित होकर साहित्य रचना में संलग्न होते है। निराला की प्रगतिशीलता जन सामान्य के जीवन में निहित है क्योकि वे जन–जन के कवि है, अपने आपको वे प्रत्येक जन में देखते है, उनके सभी कष्टों को अपना समझते है और कष्टों को बचाने के लिए तत्पर रहते है।

कहा जाता है कि वह समाज ही क्या जिसमें प्रगति का गुण विद्यमान न हों प्रगति का अर्थ तभी सार्थक हो सकता है जब समग्र का विकास हो। समग्र का विकास नहीं तो प्रगति का कोई अर्थ नहीं।

प्रगति का पहला स्वर कबीर की वाणी से प्रस्फूलित हुआ था। वे समाज के हर वर्ग को एक साथ देखना चाहते थे कबीर के मनोभावों की झलक निराला में दिखाई देती है। निराला स्व दुःख से नही पर दुःख से पीड़ित थे। जनता को दुःखी देखकर उनकी अन्तरात्मा रोती थी, जिसकी परिणति काव्य में प्रगतिशीलता के रुप में दिखायी पड़ती है। वे चाहते थे कि जन सामान्य में व्याप्त विसंगतियों एवं विषमताओं को समाप्त कर सखी सम्पन्न समाज की स्थापना हो उसी बात का प्रमाण है उनके प्रगतिवादी काव्य संग्रह।

'निराला' की प्रगतिशील दृष्टि अपनी आरम्भिक रचना 'जूही की कली' से ही दिखाई देने लगती है।

जिसमें निराला छंद के बधनों को तोड़ मुक्त छंद में कविता की रचना करते है। यह प्रयास उनकी प्रगतिशील दृष्टि का परिचायक है। इस रचना को लेकर अनेक आरोप निराला पर आलोचकों द्वारा लगाये गये परन्तु वह मदमस्त हाथी अपनी गति से आगे बढ़ता रहा उसके बाद परिमल की बात करें, जिसमें कवि एक ओर प्रकृति एवं सौंदर्य का सृष्टा हैं तो दूसरी ओर वह क्रान्तिकारी एवं विद्रोही भी है।

जीर्ण बाहु है जीर्ण शरीर
तुझे बुलाता कृषक अधीर

परिमल में निराला ने वह शंखनाद किया जिसकी गूंज अंतिम रचनाओं तक सुनायी देती है। परिमल में जागों फिर एक बार शिवाजी का पत्र तथा यमुना के प्रति काव्य ऐसे है जिनमें निराला देशवासियों के हृदय में क्रान्ति का संचार करते है। अंग्रेजो के विरुद्ध उनको लगाने का प्रयास करते है –

जागों फिर एक बार
समर अमर कर प्राण
गान गाये कहा सिन्धु से
सिन्धु–नद–तीरवाशी
सैन्हाव तुरंगो पर
चतुरंग चमू संग
सवा–सवा लाख पर
एक को चढ़ाऊँगा
गोविन्द सिंह निज
नाम जब कहाऊँगा।

निराला केवल राजनीतिक जागरण नहीं चाहते, वे तो समाज की इस पुरानी जर्जर व्यवस्था में बदलाव चाहते है। यही स्वर 'बादल राग' और आह्वान कविताओं में स्पष्ट है। भिक्षुक कविता में उनके संवेदनशील व मार्क्सवादी दृष्टिकोण की प्रस्तुति होती है –

दाता–भाग्य–विधाता से क्या पाते,
घूँट आँसुओं के पीकर रह जाते।
चाट रहे जूठी पत्तल वे कभी सड़क पर खड़े हुए,
और झपट लेने को उनसे कुत्ते भी है अड़े हुए।

यह भाव किसी भी मानव की अन्तरात्मा को झकझोरने में सक्षम है निराला ने उन विषयों को अपनी कविताओं के लिए चुना जो उस समय कवि लोक में अस्पृश्य व अग्राहत समझे जाते थे।

इसलिए उनकी कविताओं के शीर्षक जन सामान्य के निकट 'विधवा' भिक्षुक वह तोड़ती पत्थर और कुकुरमुत्ता बने। निराला के काव्य में चारों तरफ प्रगतिवादी के साथ मानवतावादी दृष्टिकोण व्याप्त है। उनके हृदय में पीड़ितों पद दलितों एवं शोषितों के प्रति गहन संवेदना व्याप्त है वह तोड़ती पत्थर में लिखा है –

वह तोड़ती पत्थर
देखा मैंने इलाहाबाद के पथ पर
वह तोड़ती पत्थर
कोई न छायादार
पेड़ वह जिसके तले बैठी हुयी स्वीकार
श्याम तन भर बधा यौवन
नत नयन, प्रिय–कर्म–रत–मन
गुरु हथौड़ा हाथ
करती बार–बार प्रहार
सामने तरु–मालिका अहालिका प्राकार।

निराला का ध्यान केन्द्रित था समाज के उस वर्ग पर जिसे दासता से सबसे ज्यादा कष्ट था, जो पूरी तरह विवश थे। इनमें भी जो सबसे दलित, निर्धन, भूमिहीन, जमीदारों की बेगारी करने वाले, शोषित जनों के प्रति निराला की सहानुभूति सबसे ज्यादा थी।

निराला ने कुकुरमुत्ता कविता में शोषित व शोषक वर्ग को बहुत ही गहराई से उकेरा है। जिसमें की कुकुरमुत्ता शोषित वर्ग का प्रतीक है तो गुलाब शोषक वर्ग का। कुकुरमुत्ता के माध्यम से निराला बताते है कि शोषित वर्ग अब और शोषण सहन नहीं करेगा। वह आवाज उठायेगा –

अबे सुन बे गुलाब
भूल मत जो पाई खुशबु रंग ओ आब
खून चूसा खाद का अशिष्ट
डाल पर इतरा रहा है केपीटलिस्ट
कितनों को तुने बनाया है गुलाम,
माली कर रक्खा, सहाया जाड़ा धाम।

वास्तव में निराला ने जितने संघर्ष अपने जीवन में देखे, देश के जन जीवन में देखे उसी को काव्य रुप प्रदान किया। कहा जा सकता है कि निराला की रचनाओं में प्रारम्भ से ही प्रगतिवादी चेतना दिखाई देती है। प्रारम्भ की रचनाओं में अनामिका, परिमल गीतिका में यह स्वर कम है परन्तु समय के साथ उनकी रचनाओं में प्रगतिवादी स्वर बढ़ता गया जो अंत तक और भी मुखर हो गया। 'सरोज स्मृति' राम की शक्तिपूजा तुलसीदास में भी नये पत्ते, गीत कुंज, आदि रचनाये तो पूरी तरह प्रगतिवादी स्वरुप लिये हुये है।

अंत में यही कहा जाना चाहिए कि 'निराला' ने अपने ऊपर हजार बार व्यंग्य सहते हुये भी मानव मन में आशा का संचार किया। निराला ने देश दुनिया दोनों को सहा और सब कुछ बर्दाश्त किया किन्तु झुके नहीं, कराहे नहीं वे आखिरी दम तक जूझते रहे।

निराला लौह कवि थे और उनकी गहराई संघर्षो के हथौड़ो से हुयी थी। उन्ही ने उन्हे निराला बनाया उनके आत्म विश्वास और अप्रतिहत साहस की ये पंक्तियाँ अन्यत्र दुर्लभ है –

मैं अकेला
देखता हूँ आ रही
मेरे दिवस की साध्ध बेला
पके आधे बाल मेरे
हुए निष्प्रय गाल मेरे
चाल मेरी मंद होता आ रही
हट रहा मेला।।

निराला को प्रगतिवाद में आधार से शिखर तक देखा जा सकता है। निराला के काव्य में प्रगतिवादी चेतना प्रखर रुप से है जिसके द्वारा वह समाज में जागृति व चेतना लाना चाहते है। क्योकि वह नहीं चाहते है कि जैसा दुःख भरा जीवन उन्होने जीया किसी ओर को जीना पड़े। जन जन को जगाने वाले इस महान कवि ने अक्टूबर 1961 में संसार को अलविदा कह दिया। एक प्रगतिवादी कवि के मन के भाव दूसरा प्रगतिवादी ही समझ सकता है।

चढ़ रही थी धूप,
गर्मियों के दिन

दिवा का तमतमाता रुप
उठी झूलसाती हुई लू
रुई ज्यों जलती हुई भू
गर्द चिनगीं छा गयी।
प्रायः हुई दुपहरः
वह तोड़ती पत्थर।

अंततः निराला हिन्दी साहित्य के शीर्षस्थ प्रगतिशील कवि है। जिन्होनें अपने संघर्षपूर्ण जीवन के अनुभव से शोषितों के प्रति समता मूलक समाज का दृष्टिकोण रखा।

सन्दर्भ ग्रन्थ :–

निराला : राग विराग (सं0 राम विलास शर्मा) राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 1985 पृष्ठ संख्या–22
निराला : राग विराग (सं0 राम विलास शर्मा) राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली पृष्ठ संख्या–50
वही : राग विराग (सं0 राम विलास शर्मा) राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली पृष्ठ संख्या–118
राम विलास शर्मा : निराला की साहित्य साधना–2 राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009 पृष्ठ संख्या–31
निराला : राग विराग (सं0 राम विलास शर्मा) राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली पृष्ठ संख्या–119

प्राचीन काल में गंगा घाटी क्षेत्र में स्त्री शिक्षा

ऋचा चौधरी*
डॉ. अंजना वर्मा**

प्राचीन काल में भारतीय समाज के अर्न्तगत शिक्षा को जीवन का अभिन्न अंग माना जाता था। वैदिक काल में सामाजिक संतुलन तथा आत्मोन्नति का माध्यम शिक्षा को माना गया था। इस काल में शिक्षा अर्थ के साथ ही धर्म, काम और मोक्ष की प्राप्ति का भी माध्यम थी। इस शिक्षा प्रणाली के अर्न्तगत महिलाओं को भी सम्मिलित किया गया था। स्त्रियां वेदाध्ययन करती थीं। वैदिक काल से प्रथम शताब्दी ई० तक स्त्रियों के वेदाध्ययन का प्रारम्भ उपनयन संस्कार से होता था। सूत्रकाल में भी स्त्रियां वेदाध्ययन एवं मंत्रोच्चारण करती थीं। वैदिक काल में स्त्रियों को धर्म, शिक्षा एंव राजनीति के क्षेत्र में पुरुषों के समान ही अधिकार मिला था। ऋग्वेद में अनेक ऐसी स्त्रियों का नाम मिलता है जो विदुषी एंव दार्शनिक थीं। इन्होंने वैदिक ऋचाओं की रचना भी की थी। ये स्त्रियां लोपामुद्रा, सिकता, विश्वारा, घोषा आदि थीं। वेदों में इन्हें 'ऋषि कहा गया है। विश्वारा को ब्रह्मवादिनी एंव मंत्रदृष्टा भी कहा गया है। ऋग्वैदिक काल में स्त्रियों को तपस्या करने का अधिकार था। आध्यात्मिक ज्ञान की उन्नति योग और तपस्या पर अवलम्बित थी, इसके अर्न्तगत स्त्रियों का सदाचरण, शील, ब्रह्मचर्य, सच्चरित आदि सम्मिलित थे। ऋग्वैदिक काल में स्त्रियां पुरुषों के साथ दार्शनिक समस्याओं पर विचार विमर्श भी करती थीं। यम–यमी संवाद, पुरुरवा–उर्वशी संवाद तथा विश्वामित्र–नदी संवाद आदि का ऋग्वेद में उल्लेख इसका प्रमाण है।

सामवेद में अकृष्टामाप, नोधा, निवावरी एवं गोपायना इत्यादि विदुषी स्त्रियों का उल्लेख मिलता है। वैदिक युगीन समाज में श्रेष्ठ गुणों से युक्त एंव शिक्षित स्त्री और पुरुष उत्कृष्ट माने जाते थे। अध्ययन की अनिवार्यता विवाह योग्य होने के लिए भी थी। कन्या के माता एंव पिता स्वयं उसे ब्रह्मचर्य जीवन में विधिवत रूप से प्रवेश कराते थे। अध्ययन करने वाली छात्राओं के दो वर्ग थे – प्रथम वर्ग में वे छात्राएं थीं जो अपना सम्पूर्ण जीवन आध्यात्म एंव दर्शनशास्त्र के अध्ययन में लगा देती थीं इन्हें 'ब्रह्मवादिनी' कहा जाता था। द्वितीय वर्ग में वे छात्राएं आती थीं जो विवाह होने के पहले तक शिक्षा ग्रहण करने का कार्य करती थीं ये 'सद्योवधू कही जाती थीं। ये कतिपय वैदिक मंत्रों तथा यज्ञ में की जाने वाली प्रार्थनाओं की शिक्षा ग्रहण करती थीं।

ब्रह्मवादिनी स्त्रियां बहुमुखी प्रतिभा की धनी होने के साथ ही साहित्य, तर्क, मीमांसा, दर्शन आदि की प्रकाण्ड ज्ञाता होती थीं। इसी प्रकार की ब्रह्मवादिनी महिला वेदवती थी जो महर्षि कुशध्वज की पुत्री थी। अध्ययन एवं चिंतन मनन के क्षेत्र में महिलाओं का रुझान दिन प्रतिदिन बढ़ता ही गया। दर्शन और तर्क जैसे जटिल और गूढ़ विषयों में भी महिलाएं सिद्धहस्त होने लगीं। इसका उदाहरण "काशकृत्स्न" नाम की ब्रह्मवादिनी द्वारा रचित "काशकृत्स्नी" नाम का ग्रन्थ है। इसमें विशिष्टीकरण करने वाली महिलाओं को 'काशकृत्स्ना' कहा गया है। महर्षि याज्ञवल्क्य की द्वितीय पत्नी मैत्रेयी वेदांत का अध्ययन करने वाली छात्रा होने के साथ ही सुप्रसिद्ध दार्शनिक भी थी। मैत्रेयी का रुझान अलंकारों की बजाए दर्शनशास्त्र में था। (वृहदारण्यक उपनिषद 2/4, 4/5)।

सा होवाच मैत्रेयी
येनाहं नामृता स्याम् किं तेनाहं कुर्यामिति।

एक अन्य महत्वपूर्ण उदाहरण सुप्रसिद्ध महिला दार्शनिक गार्गी का है। महाराजा जनक की राजसभा में हुई विद्वानों की गोष्ठी में गार्गी ने अपनी तर्कक्षमता से याज्ञवल्क्य जैसे विद्वान को अचंभित कर दिया और अपने प्रश्नों से उसने याज्ञवल्क्य सहित समस्त विद्वतसमाज को हतप्रभ कर दिया था।

(वृहदारण्यक उपनिषद 3/6/1)

अनतिप्रश्न्यां वै देवतामति पृच्छसि।

बालिकाओं के लिए वेदों का अध्ययन अतिआवश्यक था क्योंकि महिलाओं को प्रतिदिन सुबह और साम नियमित रूप से वैदिक प्रार्थना करनी होती थी। इसके साथ ही अपने पतियों के साथ पत्नियों को भी

* असिस्टेंट प्रोफेसर, इतिहास विभाग, राजकीय महाविद्यालय, पलही पट्टी, वाराणसी
** असिस्टेंट प्रोफेसर, इतिहास विभाग, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी

वैदिक यज्ञों में मंत्रोच्चारण करना पड़ता था। सीता द्वारा नियम से प्रतिदिन संध्या पाठ किये जाने का उल्लेख रामायण में मिलता है। डॉ० अल्तेकर ने इसे संध्या पाठ को वैदिक मंत्रों का पाठ कहा है। उपनिषद काल में भी महिलाएं वेदों का अध्ययन करती थी इसके साथ ही वे पुरुषों के साथ दार्शनिक विषयों पर वाद–विवाद में प्रतिभाग भी करती थीं।

बालिकाओं का उपनयन संस्कार सूत्रकाल में भी किया जाता था तथा इनकी भलाई हेतु प्रार्थना भी की जाती थी। सूत्रकालीन ग्रन्थों में मैत्रेयी, गार्गी, सुलभा, वाचकनवी एवं वडवा जैसी विदुषी महिलाओं के प्रति सम्मान व्यक्त किया गया है। परन्तु स्मृतिकाल में बालिकाओं का उपनयन संस्कार बंद कर दिया गया तथा अब केवल बालिकाओं के विवाह संस्कार में ही वैदिक मंत्रों का उच्चारण होता था शेष अन्य संस्कारों में वैदिक मंत्रों का उच्चारण भी बंद कर दिया गया था। मनु और याज्ञवल्क्य जैसे स्मृतिकारों ने बालिकाओं के विवाह संस्कार को ही उपनयन संस्कार मान लिया तथा पति की सेवा को ही गुरुकुल बना दिया। इस व्यवस्था ने महिला शिक्षा को बहुत आघात पहुँचाया और यहीं से महिला पुरुषों पर निर्भर होती गयी।

बौद्ध काल में महिला शिक्षा का पर्याप्त प्रचार प्रसार था। इस युग में महिलाएं शिक्षित होती थीं। बौद्ध संघ के अंतर्गत बहुत सी स्त्रियों ने उच्च स्तर के आध्यात्मिक ज्ञान की प्राप्ति की थी। बौद्ध संघ के अन्दर तथा बाहर बहुत सारी महिलाएं थीं जो धर्म एवं दर्शन का ज्ञान प्राप्त करने हेतु ब्रह्मचर्य का जीवन जीती थीं। 'थेरीगाथा' जो कि बौद्ध भिक्षुणियों द्वारा रचित ग्रंथ है, में जीवनभर ब्रह्मचारिणी रहने वाली और बहुत सारी विवाहित भिक्षुणियों का वर्णन मिलता है। बहुत सारी बौद्ध भिक्षुणियां अपने उच्च स्तर के ज्ञान के बल पर "थेरी" पद प्राप्त करने में सफल हुई थीं। इन थेरियों में सुमेधा, शुभा और अनुपमा जैसी उच्च वंश की बालिकाएं भी थीं इनसे विवाह करने के लिए बहुत सारे राजकुमार तथा धनी साहूकारों के पुत्र भी इच्छुक थे।

बौद्ध साहित्यों में दर्शनशास्त्र का अच्छा खासा ज्ञान रखने वाली विदुषी स्त्रियों जैसे इत्तलवण्णा, महाप्रजापति, तुलनन्दा, वजीरा आदि का उल्लेख मिलता है। 'संयुक्तनिकाय' में सुभद्रा नाम की भिक्षुणी का उल्लेख मिलता है जो अपने उपदेशों के लिए दूर–दूर तक विख्यात थी। इसी प्रकार राजगृह में एक श्रेष्ठी की कन्या जैन धर्म अपना ली थी। वह किशोरावस्था में ही समस्त शास्त्रों का गहनता से अध्ययन कर विदुषी हो गयी थी। बौद्ध काल में महिलाओं को संगीत की शिक्षा भी दी जाती थी, जिसके अर्न्तगत तबला, वीणा, ढोल इत्यादि वाद्य यंत्रों के बजाने की भी शिक्षा प्रदान की जाती थी। इसके साथ ही महिलाओं को कताई–बुनाई, सिलाई जैसे जीविकोपार्जन के साधनों की भी शिक्षा दी जाती थी। 'संयुक्तनिकाय' में उल्लिखित है कि पुत्र से उच्चतर गुणवती पुत्री को मानना चाहिए।

बौद्ध संघ की भिक्षुणियों की शिक्षा पद्धति के बारे में बौद्ध साहित्यों में कोई भी उल्लेख प्राप्त नहीं होता है। परन्तु संभवतः ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि 300 ईस्वी पूर्व से लेकर 800 ई० तक बौद्ध धर्म ने स्त्रियों की शिक्षा के संबंध में कोई विशेष सहायता प्रदान नहीं किया था। परन्तु उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर इतना तो स्पष्ट है कि उनकी शिक्षा पूर्णतः उपेक्षित भी नहीं थी।

बौद्ध और जैन धर्मों में क्रमशः बौद्ध भिक्षुणी और जैन साध्वी का स्थान बौद्ध भिक्षु और जैन साधु की तुलना में निम्नतर था। हालाँकि जैन धर्म में भी स्त्रियों को पर्याप्त स्वतंत्रता एवं सम्मान प्राप्त था। जैन धर्म के 19वें तीर्थंकर 'मल्लिनाथ' एक स्त्री थीं। मल्लिनाथ के जीवन–वृतान्त से ज्ञात होता है कि तत्कालीन समय में उच्चवर्ग की महिलाओं हेतु शिक्षा की पर्याप्त व्यवस्था थी।

जैन धर्म में तपस्वी स्त्रियों का उल्लेख मिलता है जो धर्म और दर्शन की अच्छी ज्ञाता थीं। जैन साहित्यों में उच्चकोटि का दार्शनिक ज्ञान रखने वाली महासुदत्ता, आर्य दक्षिणा आदि विदेशी धर्म प्रचारिकाओं का उल्लेख मिलता है। कौशाम्बी नरेश सहस्रानीक की कन्या जयन्ती, महावीर स्वामी के जैन धर्म से संबंधित तर्कों से संतुष्ट होकर प्रवज्या ग्रहण कर ली तथा जीवनभर ब्रह्मचर्य का पालन करती रही। इसी प्रकार सम्राट अशोक की कन्या संघमित्रा ने बौद्ध धर्म ग्रहण करके उसके सिद्धांतों के प्रचार–प्रसार हेतु श्री लंका गयी थी। जैन धर्म के दिगंबर सम्प्रदाय में महिलाओं को प्रवज्या और मोक्ष के लिए अयोग्य माना गया है। इस प्रकार जैन धर्म में भी महिलाओं का स्थान पुरुषों से कमतर था।

शिक्षा ग्रहण करने के पश्चात कुछ स्त्रियों द्वारा अध्यापन का कार्य भी किया जाता था। उपनिषदों में भी महिला शिक्षिकाओं का उल्लेख मिलता है हालांकि वे विवाहित होती थीं या अविवाहित इस संदर्भ में कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं है। महिला शिक्षिकाएं 'उपाध्याया' कही जाती थी। ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि वैदिक काल में परिवार के सबसे बड़े सदस्य द्वारा कन्याओं को शिक्षित किया जाता था। परन्तु इस काल में 'आचार्या' का भी उल्लेख प्राप्त होता है। ये आचार्या छात्राओं को पढ़ाती थीं और उन्हें बहुत सारे विषयों का

ज्ञान प्रदान करती थीं। इनकी पृथक शिक्षण–शालायें होती थी। ऐसी ही एक बालिका शिक्षणशाला का उल्लेख पाणिनि द्वारा किया गया है। माता–पिता, आचार्या के समीप अपनी कन्याओं को शिक्षा ग्रहण करने हेतु भेजते थे। तत्कालीन साहित्यों से यह ज्ञात होता है कि स्त्री–शिक्षा के दो रूप प्रचलित थे प्रथम–आध्यात्मिक शिक्षा, द्वितीय व्यवहारिक शिक्षा। अपर्णा, एकपाटला, एकपर्णा, बृहस्पति–भगिनी भुवना, मैना, सुनति, शतरूपा, धारिणी आदि स्त्रियों का नाम आध्यात्मिक ज्ञान के क्षेत्र में विशेष है। उल्लेखनीय है ये सभी 'ब्रह्मवादिनी' थीं। ब्रह्मवादिनीयो के अतिरिक्त ऐसी बालिकाओं का भी उल्लेख मिलता है जिन्होंने तपस्या के बल पर मनोनुकूल वर की प्राप्ति की, उदाहरण के लिए धर्मव्रता, पीवरी, उमा आदि बालिकाओं ने अपना मनचाहा वर अपनी तपस्या के बल पर प्राप्त किया था। इस प्रकार आध्यात्मिक ज्ञान में वृद्धि तपस्या और योग पर भी निर्भर करती थी। इसमें महिला का सदाचरण, सच्चरित, शील, सद्व्यवहार एंव ब्रह्मचर्य भी सम्मिलित था। महिलाएं ललित कलाओं एंव व्यवहारिक शिक्षा में भी सिद्धहस्त होती थी। व्यवहारिक शिक्षा के अर्न्तगत वे नृत्य, गायन, चित्रकला, संगीत इत्यादि की शिक्षा प्राप्त करती थीं।

हालाँकि महिला शिक्षिकाओं की संख्या ज्यादा नहीं थी। इसी प्रकार घर से बाहर निकलकर उच्च शिक्षा प्राप्त करने वाली बालिकाओं की संख्या भी बहुत अधिक नहीं थी। इसका एक प्रमाण चौथी शताब्दी ई० के रचनाकार हारित का एक वर्णन है जिसमें कहा गया है कन्याओं को घर में ही किसी संबंधित व्यक्ति से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। संभवतः इसी कारण से प्राचीन काल के भारतीय विश्वविद्यालयों के विवरणों में कहीं पर भी 'छात्राओं' का उल्लेख नहीं किया गया है।

तीसरी सदी ई० तक सामान्य तौर पर कन्याओं को परिवार में ही शिक्षा दी जाती थी और उनका उससे संबंधित उपनयन संस्कार भी किया जाता था। क्षत्रिय, ब्राह्मण और वैश्य कन्याओं को वैदिक और साहित्यिक शिक्षा भी प्रदान की जाती थी परन्तु बाद के समय में स्थिति में परिवर्तन आया और बाल विवाह की कुप्रथा का प्रचलन होने लगा, इसने कन्याओं की शिक्षा को गहरा आघात पहुँचाया। अब परिवार की समस्त आशाओं का केंद्र पुत्र को माना गया तथा कन्या को अनेक दुःखों का कारण कहा गया। यहाँ तक की श्रीमद् भगवतगीता में भी महिलाओं को शूद्रों के समान माना गया है।

आरम्भिक ई० शताब्दी तक कन्याओं का उपनयन संस्कार औपचारिकता मात्र रह गया था और बाद में उसे भी समाप्त कर दिया गया। उपनयन संस्कार के बिना महिलाएं शिक्षा और वेदों के ज्ञान से वंचित रह गयीं। मनु और याज्ञवल्क्य की व्यवस्था ने भी स्त्री शिक्षा को बहुत आघात पहुँचाया था। यहीं से महिलाओं के लिए सामाजिक और कानूनी दृष्टिकोण से हमेशा पुरुषों के अधीन रहने की नीव तैयार हो गयी। इसी काल से विवाह हेतु योग्य वर की प्राप्ति के लिए प्रतियोगिता भी शुरू हो गयी। इसका दुष्परिणाम यह हुआ कि अब कम उम्र में ही लड़कियों का विवाह होने लगा, इससे शिक्षा का अवसर भी समाप्त हो गया। इसके साथ ही महिलाओं के सामाजिक और धार्मिक महत्व को बहुत कम कर दिया गया। बेटी का जन्म पिता के लिए बहुत चिंता का विषय होता है ऐसा पंचतंत्र में कहा गया है। हालांकि उच्च वर्ग की बालिकाओं को गुप्त काल में व्यवहारिक शिक्षा के रूप में नृत्य, संगीत, चित्रकला, खिलौना बनाने, माला बनाने, गृहसज्जा आदि की शिक्षा दी जाती थी। स्त्री शिक्षा के ह्रास पर विचार व्यक्त करते हुए अल्तेकर ने लिखा है कि सम्पन्न परिवारों में अल्प आयु में विवाह होने से कन्याओं को शिक्षा पूर्ण करने का बहुत कम अवसर उपलब्ध हो पाता था। वैदिक शिक्षा प्राप्त करने हेतु 24 वर्ष की अवधि सुनिश्चित की गयी थी, कम उम्र में विवाह होने से उन्हें मात्र 6 या 7 वर्ष का समय ही मिल पाता था। गरीब घरों की कन्यायें गृहकार्यों में ही व्यस्त रहती थीं। इसलिए इन्हें अध्ययन हेतु समय नहीं मिल पाता था। ऐसी कन्याएं विवाह के अवसर पर आवश्यक मंत्रों का ठीक से उच्चारण भी नहीं कर पाती थीं। वैदिक मंत्रों के उच्चारण में होने वाली अल्प त्रुटि भी गम्भीर समझी जाती थी और इसकी वजह से सम्पूर्ण परिवार को देवताओं के प्रकोप का भाजक माना जाता था। संभवतः इसी वजह से बालिकाओं के वेदाध्ययन को प्रतिबंधित कर दिया गया।

गुप्तकाल में महिलाओं की शिक्षा पर ध्यान दिया गया। सम्पन्न परिवारों की बालिकाओं को सभी कलाओं में दीक्षित किया जाता था। इस समय बालिकाओं को शिक्षा देते समय इस बात पर विशेष ध्यान दिया जाता था कि वे संस्कृत के श्लोकों तथा ऋचाओं को समझ सकें एंव आवश्यकता पड़ने पर स्वयं भी रचनाएं कर सकें। हालांकि इस समय संस्कृत भाषा का प्रचलन राजघरानों, सम्पन्न परिवारों एंव ब्राह्मण परिवारों तक ही सीमित था। कालिदास कृत 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' में बालिकाओं द्वारा ब्रह्मचर्य व्रत का पालन, यज्ञोपवीत को धारण करने तथा गायत्री मंत्र का वाचन करने का उद्धरण प्राप्त होता है। कालिदास के 'मालविकाग्निमित्रम्' में नाट्याचार्य गणदास का उल्लेख मिलता है जो कि मालविका के गुरु थे। इससे इस

बात की पुष्टि होती है कि महिलाओं को नृत्य कला में भी दीक्षित किया जाता था। इस काल में उच्च कुल की बालिकाओं को उच्च शिक्षा दिये जाने की व्यवस्था थी। राजपरिवार की कन्याओं को प्रशासनिक शिक्षा भी दी जाती थी। चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य की पुत्री प्रभावती गुप्त ने अपने पति रुद्रसेन द्वितीय की मृत्यु के पश्चात अपने अल्पवयस्क पुत्रों दिवाकर गुप्त और दामोदर गुप्त की संरक्षिका के रूप में शासन का सफलतापूर्वक संचालन किया था। अमरसिंह के 'अमरकोष' में महिला शिक्षिकाओं एंव वेदों में पारंगत विदेशी स्त्रियों का वर्णन मिलता है। कालिदास के 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' में महिलाओं के शिक्षित होने और विविध कलाओं में पारंगत होने की जानकारी मिलती है। इस काल में महिलाएं सार्वजनिक उत्सवों में भी भाग लेती थीं।

गुप्तोत्तर काल में भी महिलाएं वैदिक शिक्षा प्राप्त करते दिखती हैं। हालांकि अल्पायु में विवाह होने से साधारण परिवार की अधिकतर बालिकाएं शिक्षा से वंचित रह जाती थी या उन्हें घर पर ही व्यवहारिक शिक्षा के अर्न्तगत नृत्य, संगीत, चित्रकला व कुछ अन्य शिल्पों का प्रशिक्षण दे दिया जाता था हालांकि सम्पन्न घरानों में कन्याओं के उच्च शिक्षा पर ध्यान दिया जाता था। हर्षवर्धन की बहन राजश्री उच्च शिक्षा प्राप्त की थी और राजसभा में होने वाले वाद–विवादों में भाग लेती थी। बाणभट्ट द्वारा रचित हर्षचरित से ज्ञात होता है कि राजश्री नृत्य, संगीत एंव अन्य कलाओं की भी शिक्षा प्राप्त की थी। हर्ष के समय भारत आए चीनी यात्री व्हेनसांग, बह्मपुरा देश में महिलाओं के शासन का उल्लेख करता है।

एक आदर्श जीवन व्यतीत करने के लिए बौद्धिक और भावनात्मक विकास बहुत आवश्यक है और यह विकास शिक्षा के माध्यम से ही हो सकता है। जब शिक्षा का ह्रास होना आरम्भ हुआ तब उच्च शिक्षा मात्र उच्च परिवारों की स्त्रियों को ही दी जाती थी। परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि प्रत्येक लड़की को उसकी स्थिति के अनुसार अवश्य ही शिक्षित किया जाता होगा, क्योंकि मनुस्मृति के काल में ही सातवाहन रानियों ने शासन का संचालन किया जो कि शिक्षा के अभाव में असंभव था। निस्संदेह बालिकाओं में वैदिक और साहित्यिक शिक्षा का ह्रास हो रहा था लेकिन उन्हें गृह विज्ञान की शिक्षा प्रदान करने में किसी भी प्रकार की कमी नहीं की जाती थी।

इस प्रकार स्पष्ट है कि प्राचीन काल में स्त्रियों को शिक्षा ग्रहण करने का अधिकार था। इस काल में बहुत सारी स्त्रियां वेद, दर्शन, धर्म और साहित्य की ज्ञाता थीं। ऋग्वैदिक काल में स्त्रियां, पुरूषों के साथ दार्शनिक समस्याओं पर विचार विमर्श भी करती थीं। इसका प्रमाण यम–यमी संवाद, पुरूरवा–उर्वशी संवाद तथा विश्वामित्र–नदी, याज्ञवल्क्य–गार्गी संवाद है। गार्गी, मैत्रेयी और वाचक्नवी जैसी विदुषियों ने शास्त्रार्थ और ज्ञान के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया। हालांकि बाद के समय में सामाजिक परिवर्तन और धार्मिक रूढ़ियों के कारण स्त्री शिक्षा में गिरावट आती गयी और महिलाओं के लिए शिक्षा के अवसर सीमित हो गए। वर्तमान समय में इतिहास हमें समान शिक्षा के अधिकार की आवश्यकता और स्त्री शिक्षा के महत्व का संदेश देता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. काठक गृह सूत्र, 25.23
2. रामायण 7.17, 5.14–49
3. नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग–10 पृ० 553 में प्रकाशित श्रीमती अन्नपूर्णा देवी द्वारा लिखित 'स्त्री शिक्षा'– शीर्षक लेख।
4. महाभारत, 4.1.14, 3.155, 1.173.10
5. बृहदारण्यकोपनिषद्, 2.5, 4.5, 36.1
6. डा० उर्मिला प्रकाश मिश्र, "प्राचीन भारत में नारी", पृ०–3, 233
7. ए. एस. अल्तेकर, "पोजीशन ऑफ वूमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन", पृ०–11, 14
8. गोभिल गृहसूत्र, 3.7, 13.2
9. आपस्तम्ब गृहसूत्र, 15.12–13
10. आश्वलायन गृहसूत्र, 3.4.4
11. हार्नर, "वीमेन अण्डर प्रिमिटिव बुद्धिज्म" पृ०–18
12. विमल चन्द्र पाण्डे, "भारत वर्ष का सामाजिक इतिहास", पृ० 118
13. अंगुत्तर निकाय 3, पृ० 293
14. संयुक्तनिकाय 3.2.6
15. ए. एस. अल्तेकर, "प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धति", पृष्ठ–130, 162, 187

16. भगवती सूत्र, जिल्द–3 पृष्ठ–257 (गुजराती एडिशन)
17. पातंजलि का "महाभाष्य", 4.1.49
18. पाणिनी, 6.2.46, छात्रादयः शालायम्
19. वायु पुराण 72.13–15, 66.27, 30.28.29, 41.31
20. ब्रह्माण्ड पुराण 3.10.15–16, 2.13.30
21. मत्स्य पुराण, 20.27, 4.24
22. विष्णु पुराण 3.10.19
23. तैत्तरीय संहिता, 6.1.6.5
24. शतपथ ब्राह्मण 14.3.1.35
25. भगवद्गीता, 9.32
26. मनुस्मृति 5.1.39, 9.75
27. याज्ञवल्क्य स्मृति 1.21
28. पंचतंत्र मित्रभेद, 5
29. वात्स्यायन, "कामसूत्र" 1.3.16, 1.3.1
30. अभिज्ञानशाकुन्तलम् 1.35
31. वाटर्स टी ऑन युवान च्वांग ट्रेवल्स इन इण्डिया भाग–1 पृ०–230

जवाहरलाल नेहरू के राजनीतिक विचार वर्तमान संदर्भ में : एक अध्ययन

डॉ. रत्ना कुमारी*

सारांश

पंडित जवाहरलाल नेहरू आधुनिक भारत के प्रमुख राष्ट्रनिर्माताओं और दूरदर्शी राजनीतिक चिंतकों में अग्रणी थे। उनके राजनीतिक विचारों ने स्वतंत्र भारत की लोकतांत्रिक, धर्मनिरपेक्ष, समाजवादी तथा आधुनिक शासन-व्यवस्था के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। प्रस्तुत शोध-पत्र में वर्तमान समय के संदर्भ में नेहरू के राजनीतिक विचारों की प्रासंगिकता का विश्लेषण किया गया है। अध्ययन में लोकतंत्र, धर्मनिरपेक्षता, राष्ट्रवाद, समाजवाद, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, योजनाबद्ध आर्थिक विकास, गुटनिरपेक्षता तथा अंतरराष्ट्रीय सहयोग संबंधी उनके विचारों का समालोचनात्मक परीक्षण किया गया है। शोध से स्पष्ट होता है कि नेहरू ने लोकतंत्र को केवल शासन प्रणाली न मानकर सामाजिक न्याय, समान अवसर, नागरिक स्वतंत्रता और उत्तरदायी शासन का आधार माना। उन्होंने समावेशी राष्ट्रवाद, वैज्ञानिक चेतना तथा संवैधानिक मूल्यों के माध्यम से आधुनिक भारत के निर्माण की परिकल्पना प्रस्तुत की। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर उन्होंने विश्व शांति, शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व तथा सहयोगपूर्ण कूटनीति का समर्थन किया। वर्तमान समय में जब लोकतांत्रिक संस्थाओं की सुदृढ़ता, सामाजिक समरसता, वैज्ञानिक विकास, वैश्विक सहयोग और सतत आर्थिक प्रगति जैसी चुनौतियाँ प्रमुख हैं, तब नेहरू का राजनीतिक चिंतन अत्यंत प्रासंगिक प्रतीत होता है। यह अध्ययन निष्कर्ष प्रस्तुत करता है कि नेहरू के राजनीतिक विचार केवल ऐतिहासिक महत्व के नहीं हैं, बल्कि समकालीन लोकतांत्रिक शासन, समावेशी विकास और वैश्विक सहयोग के लिए आज भी महत्वपूर्ण वैचारिक आधार प्रदान करते हैं।

मुख्य शब्द: राजनीतिक विचार, लोकतंत्र, धर्मनिरपेक्षता, राष्ट्रवाद, समाजवाद, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, गुटनिरपेक्षता, अंतरराष्ट्रीय सहयोग, समकालीन प्रासंगिकता।

परिचय

पंडित जवाहरलाल नेहरू आधुनिक भारत के निर्माण में निर्णायक भूमिका निभाने वाले प्रमुख राष्ट्रनिर्माताओं में अग्रणी थे। वे केवल स्वतंत्रता संग्राम के लोकप्रिय नेता ही नहीं, बल्कि एक दूरदर्शी राजनीतिक चिंतक, लोकतांत्रिक मूल्यों के समर्थक, कुशल प्रशासक तथा आधुनिक भारत की वैचारिक आधारशिला के प्रमुख निर्माता थे। उन्होंने भारतीय जनता के साथ आत्मीय संबंध स्थापित करते हुए लोकतंत्र को केवल शासन व्यवस्था के रूप में नहीं, बल्कि जनसहभागिता और सामाजिक उत्तरदायित्व पर आधारित जीवन-पद्धति के रूप में देखा। यही कारण है कि उन्हें भारतीय समाज में व्यापक सम्मान और जनविश्वास प्राप्त हुआ (सर्वपल्ली गोपाल, 1975, पृ. 112–116)।

नेहरू का राजनीतिक चिंतन स्वतंत्रता प्राप्ति तक सीमित नहीं था। उनका उद्देश्य ऐसा भारत निर्मित करना था जो लोकतांत्रिक, धर्मनिरपेक्ष, वैज्ञानिक दृष्टिकोण से युक्त, सामाजिक न्याय पर आधारित तथा आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर हो। उन्होंने राष्ट्र-निर्माण को केवल राजनीतिक स्वतंत्रता का परिणाम नहीं माना, बल्कि उसे सामाजिक परिवर्तन, आर्थिक विकास और आधुनिक संस्थाओं के निर्माण से जोड़कर देखा (जवाहरलाल नेहरू, 1946, पृ. 510–517)।

स्वतंत्र भारत के प्रथम प्रधानमंत्री के रूप में नेहरू ने संसदीय लोकतंत्र को सुदृढ़ आधार प्रदान किया। उन्होंने संवैधानिक संस्थाओं को मजबूत किया, योजनाबद्ध आर्थिक विकास की शुरुआत की, वैज्ञानिक अनुसंधान को प्रोत्साहित किया तथा स्वतंत्र विदेश नीति के माध्यम से भारत की वैश्विक पहचान स्थापित की। संविधान निर्माण की प्रक्रिया से लेकर स्वतंत्र भारत के प्रारम्भिक दशकों तक उनका नेतृत्व आधुनिक भारतीय राज्य की संरचना को आकार देने में अत्यंत महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुआ (ग्रैनविल ऑस्टिन, 1966, पृ. 35–47)।

राजनीति विज्ञान की दृष्टि से नेहरू का राजनीतिक दर्शन लोकतंत्र, समाजवाद, धर्मनिरपेक्षता, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, अंतरराष्ट्रीय सहयोग और गुटनिरपेक्षता जैसे सिद्धांतों का संतुलित समन्वय प्रस्तुत करता है। उनके विचारों ने भारतीय लोकतंत्र की संस्थागत संरचना को दिशा प्रदान की तथा समकालीन राजनीतिक विमर्श को भी गहराई से प्रभावित किया (बिमल प्रसाद, 1985, पृ. 156–170)।

लोकतंत्र नेहरू के राजनीतिक दर्शन का केंद्रीय आधार था। उनका विश्वास था कि लोकतंत्र केवल चुनावों या प्रतिनिधि शासन तक सीमित नहीं है, बल्कि यह व्यक्ति की स्वतंत्रता, समानता, सहिष्णुता तथा सामाजिक उत्तरदायित्व पर आधारित जीवन-दृष्टि है। वे मनुष्य की नैतिक चेतना और विवेक में विश्वास रखते थे तथा लोकतंत्र को मानव गरिमा की रक्षा का सर्वोत्तम माध्यम मानते थे (जवाहरलाल नेहरू, 1949, पृ. 112–116)।

* यमुना, मकान संख्या–9, वास्तु विहार, बैजनाथपुर, सहरसा, बिहार – 852221

नेहरू के अनुसार वास्तविक लोकतंत्र तभी संभव है जब राजनीतिक अधिकारों के साथ-साथ आर्थिक समानता और सामाजिक न्याय भी सुनिश्चित हों। वे ऐसे लोकतंत्र के पक्षधर थे जिसमें प्रत्येक नागरिक को विचार एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, धार्मिक आस्था की स्वतंत्रता, समान अवसर तथा सम्मानजनक जीवन प्राप्त हो। इस प्रकार उनके लिए लोकतंत्र का उद्देश्य केवल राजनीतिक अधिकार प्रदान करना नहीं, बल्कि सामाजिक और आर्थिक समानता स्थापित करना भी था (जवाहरलाल नेहरू, 1936, पृ. 18–26)।

उन्होंने लोकतंत्र का आधार समाज के आत्मानुशासन को माना। उनके अनुसार जिस समाज में नागरिक अपने अधिकारों के साथ-साथ कर्तव्यों के प्रति भी जागरूक हों, वहाँ लोकतांत्रिक व्यवस्था अधिक प्रभावी और स्थायी होती है। इसलिए लोकतंत्र की सफलता नागरिकों की सहिष्णुता, उत्तरदायित्व और सक्रिय जनभागीदारी पर निर्भर करती है (जवाहरलाल नेहरू, 1958, पृ. 33–36)।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत में संसदीय लोकतंत्र की सफलता में नेहरू का योगदान अत्यंत महत्त्वपूर्ण रहा। अनेक विद्वानों को आशंका थी कि भाषायी, धार्मिक और सांस्कृतिक विविधताओं से युक्त भारत में लोकतांत्रिक व्यवस्था स्थिर नहीं रह सकेगी, किन्तु नेहरू ने अपने नेतृत्व से इस आशंका को निराधार सिद्ध किया (ग्रैनविल ऑस्टिन, 1966, पृ. 24–31)।

उन्होंने ब्रिटिश संसदीय प्रणाली से प्रेरणा अवश्य ली, परंतु उसे भारतीय परिस्थितियों के अनुरूप विकसित किया। वे विचारों की स्वतंत्रता, रचनात्मक आलोचना, विपक्ष की सक्रिय भूमिका तथा शासन में जनसहभागिता के समर्थक थे। उनके अनुसार लोकतंत्र तभी सशक्त हो सकता है जब विभिन्न सामाजिक और राजनीतिक समूहों को अपनी बात रखने का समान अवसर मिले (सुभाष कश्यप, 2015, पृ. 58–64)।

राष्ट्र-निर्माण के प्रारम्भिक वर्षों में उन्होंने संसद, न्यायपालिका, स्वतंत्र प्रेस तथा अन्य लोकतांत्रिक संस्थाओं की गरिमा बनाए रखने पर विशेष बल दिया। उनके नेतृत्व में संसद केवल विधि निर्माण की संस्था न रहकर राष्ट्रीय संवाद, नीति-निर्माण और लोकतांत्रिक उत्तरदायित्व का प्रभावी मंच बनी (सुभाष कश्यप, 2015, पृ. 82–89)।

राष्ट्रवाद के विषय में नेहरू का दृष्टिकोण उदार, समावेशी और मानवीय था। उन्होंने राष्ट्रीय स्वतंत्रता का दृढ़ समर्थन किया, किन्तु संकीर्ण, उग्र और आक्रामक राष्ट्रवाद का विरोध किया। उनके अनुसार राष्ट्रवाद का उद्देश्य अन्य देशों के प्रति वैमनस्य उत्पन्न करना नहीं, बल्कि राष्ट्रीय एकता, लोकतांत्रिक मूल्यों और सामाजिक समरसता को सुदृढ़ करना होना चाहिए (जवाहरलाल नेहरू, 1946, पृ. 523–529)।

उनका मानना था कि यदि राष्ट्रवाद केवल शक्ति, प्रभुत्व और राजनीतिक स्वार्थ का माध्यम बन जाए तो वह विश्व शांति के लिए गंभीर खतरा बन सकता है। इसलिए उन्होंने राष्ट्रवाद को मानवता और अंतरराष्ट्रीय सहयोग के साथ जोड़कर देखा (जवाहरलाल नेहरू, 1936, पृ. 90–96)।

महात्मा गांधी के नेतृत्व ने नेहरू के राजनीतिक चिंतन को गहराई से प्रभावित किया। गांधीजी के मार्गदर्शन में उन्होंने सत्य, अहिंसा, जनसहभागिता और राष्ट्रीय सेवा के आदर्शों को अपनाया। असहयोग, सविनय अवज्ञा और भारत छोड़ो आंदोलनों में सक्रिय भागीदारी ने उन्हें भारतीय समाज, विशेषकर किसानों और श्रमिकों की वास्तविक समस्याओं से परिचित कराया। इन अनुभवों ने उनके राजनीतिक चिंतन को अधिक मानवीय और समाजोन्मुख बनाया (जवाहरलाल नेहरू, 1936, पृ. 45–61)।

नेहरू विश्व शांति, शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व और अंतरराष्ट्रीय सहयोग के प्रबल समर्थक थे। उनका विश्वास था कि युद्ध किसी भी समस्या का स्थायी समाधान नहीं हो सकता। इसी उद्देश्य से उन्होंने गुटनिरपेक्ष आंदोलन, पंचशील के सिद्धांत तथा संयुक्त राष्ट्र की भूमिका का समर्थन किया। वे चाहते थे कि सभी राष्ट्र समानता, संप्रभुता और पारस्परिक सम्मान के आधार पर संबंध स्थापित करें (जवाहरलाल नेहरू, 1961, पृ. 14–22)।

आज जब विश्व युद्ध, आतंकवाद, जलवायु परिवर्तन और भू-राजनीतिक तनाव जैसी चुनौतियों का सामना कर रहा है, तब नेहरू की शांतिपूर्ण कूटनीति और अंतरराष्ट्रीय सहयोग की अवधारणा पहले से अधिक प्रासंगिक दिखाई देती है (एम. एस. राजन, 1994, पृ. 145–151)।

आर्थिक क्षेत्र में नेहरू ने योजनाबद्ध विकास, औद्योगिकीकरण, सार्वजनिक क्षेत्र, वैज्ञानिक अनुसंधान तथा तकनीकी शिक्षा को राष्ट्रीय प्रगति का आधार बनाया। उनका उद्देश्य भारत को आत्मनिर्भर, आधुनिक और औद्योगिक राष्ट्र के रूप में विकसित करना था। उन्होंने उच्च शिक्षा संस्थानों, अनुसंधान केंद्रों तथा सार्वजनिक उपक्रमों की स्थापना के माध्यम से आधुनिक भारत की वैज्ञानिक संरचना को मजबूत किया (जवाहरलाल नेहरू, 1946, पृ. 545–553)।

वैश्वीकरण के वर्तमान दौर में भी उनके विचार प्रासंगिक हैं। वे अंतरराष्ट्रीय आर्थिक सहयोग के समर्थक थे, परंतु साथ ही यह भी मानते थे कि विकास की प्रक्रिया राष्ट्रीय हित, सामाजिक न्याय और आर्थिक आत्मनिर्भरता के अनुरूप होनी चाहिए (जवाहरलाल नेहरू, 1961, पृ. 48–53)।

आज लोकतंत्र, धर्मनिरपेक्षता, वैज्ञानिक सोच, समावेशी विकास, सामाजिक न्याय तथा अंतरराष्ट्रीय सहयोग जैसे विषय सार्वजनिक नीति और राजनीतिक विमर्श के केंद्र में हैं। इन सभी क्षेत्रों में नेहरू के विचार आज भी मार्गदर्शक सिद्ध

होते हैं। उनकी लोकतांत्रिक दृष्टि संवैधानिक मूल्यों, नागरिक स्वतंत्रता, जनभागीदारी तथा उत्तरदायी शासन को मजबूत करने की प्रेरणा देती है (रामचन्द्र गुहा, 2007, पृ. 642–650)।

वर्तमान भारत में आर्थिक विकास, तकनीकी प्रगति, सामाजिक समरसता, सहिष्णुता और वैज्ञानिक चेतना की आवश्यकता पहले से अधिक अनुभव की जा रही है। इन सभी संदर्भों में नेहरू की विकास-दृष्टि और आधुनिकता की अवधारणा अत्यंत उपयोगी सिद्ध होती है (बिपिन चन्द्र, 2008, पृ. 545–550)।

समग्र रूप से कहा जा सकता है कि पंडित जवाहरलाल नेहरू का राजनीतिक दर्शन भारतीय लोकतंत्र, धर्मनिरपेक्षता, सामाजिक न्याय, वैज्ञानिक दृष्टिकोण तथा विश्व शांति के आदर्शों का संतुलित समन्वय प्रस्तुत करता है। उन्होंने ऐसे भारत की कल्पना की थी जो स्वतंत्रता, समानता, न्याय, सहिष्णुता और मानवीय गरिमा पर आधारित हो। बदलती राष्ट्रीय और वैश्विक परिस्थितियों के बावजूद उनके विचार आज भी लोकतांत्रिक शासन, समावेशी विकास तथा उत्तरदायी राजनीति के लिए प्रेरणा और मार्गदर्शन का महत्त्वपूर्ण स्रोत बने हुए हैं। इस प्रकार नेहरू का राजनीतिक चिंतन केवल ऐतिहासिक विरासत नहीं, बल्कि वर्तमान और भविष्य की लोकतांत्रिक राजनीति के लिए भी समान रूप से प्रासंगिक है (सर्वपल्ली गोपाल, 1984, पृ. 381–390)।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. चन्द्र, बिपिन। *आधुनिक भारत,* ओरिएंट ब्लैकस्वान, हैदराबाद, 2008।
2. गुहा, रामचन्द्र। *इंडिया आफ्टर गांधी,* पिकाडोर इंडिया, नई दिल्ली, 2007।
3. गोपाल, सर्वपल्ली। *जवाहरलाल नेहरू: एक जीवनी* (खंड-1)। ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 1975।
4. गोपाल, सर्वपल्ली। *जवाहरलाल नेहरू: एक जीवनी* (खंड-2)। ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 1979।
5. गोपाल, सर्वपल्ली। *जवाहरलाल नेहरू: एक जीवनी* (खंड-3)। ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 1984।
6. कश्यप, सुभाष सी. *हमारा संविधान,* नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली, 2015।
7. नेहरू, जवाहरलाल। *भारत की खोज,* ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 1946 (पुनर्मुद्रित संस्करण 2004)।
8. नेहरू, जवाहरलाल। *आत्मकथा,* पेंगुइन बुक्स इंडिया, नई दिल्ली, 2004। (प्रथम प्रकाशन 1936)
9. नेहरू, जवाहरलाल। *भारत की एकता,* जॉन डे कम्पनी, न्यूयॉर्क, 1941।
10. नेहरू, जवाहरलाल। *भारत की विदेश नीति: चयनित भाषण,* प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, नई दिल्ली, 1961।
11. प्रसाद, बिमल। *जवाहरलाल नेहरू: एक राजनीतिक जीवनी,* राजन, एम. एस. *भारत की विदेश नीति और गुटनिरपेक्ष आंदोलन,* कोणार्क पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 1994।
12. ऑस्टिन, ग्रैनविल। *भारतीय संविधान: एक राष्ट्र की आधारशिला.* ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 1966।

महामान बौद्ध दर्शन में तत्वमीमांसा

नागेन्द्र सिंह*
डॉ. प्रीतम कुमार**

स्वलक्षण की अवधारणा बौद्ध दर्शन की तर्कतः मूल प्रतिज्ञा है। यही बौद्ध तत्त्वमीमांसा की आधारभूत प्रस्थापना है, जिसके आधार पर वे वाह्य संसार की व्याख्या करते हैं। बौद्ध दर्शन के मौलिक प्रस्थान बिन्दुओं, यथा क्षणिकवाद, प्रतीत्यसमुत्पाद आदि की तर्कसंगत प्रतिष्ठा का आधार यही स्वलक्षण का प्रत्यय है। वस्तुतः स्वलक्षण की अवधारणा एक ऐसा नाभिक है, जिसके अन्तर्गत सम्पूर्ण बौद्ध दर्शन की समीक्षा हो जाती है।

स्वलक्षण अत्यन्त सरल, स्वबिम्बित शुद्ध सत्तामात्र है। इसी के आधार पर ज्ञानगत संसार की आनुभविक विविधता की संरचना बुद्धि की विकल्पात्मक क्रियाओं द्वारा होती है। सत्ता के परमार्थ धर्म के रूप में स्वलक्षण की अवधारणा बौद्ध दर्शन के प्रारम्भ से वर्तमान रही है। सत्ता के अवयवों के रूप में धर्म प्रविजय का वैज्ञानिक प्रदृश्यतावादी दृष्टिकोण, आरम्भिक बौद्ध दर्शन की केन्द्रीय अवधारणा थी, जहाँ 'स्वलक्षण धारणाद धर्मः' के रूप में धर्मों को परिभाषित किया गया। बौद्ध दर्शन में 'स्वलक्षण' एक पारिभाषिक शब्द है। यह 'स्व' और 'लक्षण' दो शब्दों के योग से बना है, जिसका साधारण अर्थ होता है 'अपना लक्षण।'[1] अर्थात् किसी वस्तु का असाधारण तत्व, उसका निजी स्वरूप, जो वह अपने आप में है, स्वलक्षण कहलाता है। वाचस्पति मिश्र ने स्वलक्षण में 'स्व' पद उपसर्ग के स्थान पर होने से किसी वस्तु के सजातीय–विजातीय व्यावृत्तस्वरूप का अर्थ ग्रहण बताया है, ''स्वम् साधारणमन्यतो व्यावृत्त लक्षण यस्यः।''[2] मोक्षाकर गुप्त ने भी स्वलक्षण का ऐसा ही अर्थ निरूपित किया है–''विजातीय सजातीय व्यावृत्तः स्वलक्षणमित्यर्थः।''[3]

'स्वलक्षण' शब्द से जिस अर्थ का ज्ञापन या द्योतन होता है, उसे बौद्ध दर्शन में 'परमार्थ सत्' कहा गया है।[4] किसी वस्तु का अकल्पित, अकृत्रिम या अनारोपित स्वरूप ही परमार्थ सत् होता है।[5] बौद्ध दर्शन में ऐसे परमार्थ सत् स्वलक्षण की परिभाषा ''एकक्षणमात्रः स्वलक्षणम् क्षणमः''[6] के रूप में की गयी है। यहां क्षण का अभिप्राय काल के न्यूनतम, अविभाज्य अंश से नहीं है[7], अपितु यहाँ क्षण का तात्पर्य वस्तुक्षण = वाह्य वस्तुओं के उद्दीपन से उत्पन्न, इन्द्रियों द्वारा ग्राह्य क्षण – अत्यन्त शुद्ध निर्विकल्पक क्षण से है। इसलिए पुनः क्षण की परिभाषा 'नील–पीत–क्षणत्वं' से की गयी है। क्षण की ऐसी परिभाषा से साधारणतया 'क्षण' नील–पीत वाह्य वस्तुओं के असाधारण स्वरूप को द्योतित करता है।[8] ब्रह्मविद्याभरण में क्षण का अर्थ ''बौद्धानाम् क्षणपादेन घटादिद एवं पदार्थों व्यवह्यते न तदरिक्त–कश्चित् क्षण नामा कालोहित'' उल्लिखित है।[9]

यह वस्तुक्षण–सत्ताक्षण–परमार्थ सत्, तत्व स्वलक्षण, सत्तात्मक और भावात्मक दृष्टि से अर्थ क्रियाकारी होता है तथा ज्ञानात्मक और निषेधात्मक दृष्टि से यह सत् निर्विकल्पक होता है। विकल्परचित कल्पित वस्तु हमारी प्रज्ञा की कृति, मानसिक संरचना मात्र होती है। आनुभविक वस्तु का जो स्वरूप सामान्यजन के सामान्य अनुभव में प्रदर्शित होता है वह साक्षात्कार के आधार पर, बौद्धिक विकल्पों के संश्लेषण द्वारा संरचित होता है।[10] परमार्थ सत् स्वलक्षण वह है जो हमारे शुद्ध विज्ञान के अनुरूप होता है। शुद्ध निर्विकल्पक विज्ञान ही परमार्थ सत् स्वलक्षण का आनुभविक जगत् में एक मात्र प्रत्ययात्मक प्रतिनिधि है। इस ज्ञान बौद्धिक विकल्पावृत रूप से ही सम्भव है, क्योंकि अर्थ की प्रतीति ही ज्ञान है और वह अर्थ तथा विज्ञान के सादृश्य के कारण सिद्ध होता है[11] लेकिन इस सादृश्य का निर्धारण बौद्धिक है इसलिए आनुभविक वस्तु विषयक सामान्यजनों का ज्ञान, जो नाम, जाति, गुण, द्रव्य, सम्प्रयुक्त होता है, उसमें शुद्ध सत्तामात्र और कल्पना के अंश दोनों साथ–साथ सम्मिलित होते हैं। इन दोनों की पृथक्–पृथक् सहभागिता को निर्धारित करने के लिए शुद्ध सत्तामात्र और कल्पना के तत्वों को पृथक् करना होता है। पृथक्करण के पश्चात् यह प्रतीत होता है कि, हम अपने ज्ञान में केवल उसी अंश को विचार, अनुभव, वाणी में व्यक्त कर सकते हैं, जो कि कल्पना या विकल्प संसरित होता है। हम परमार्थ सत् स्वलक्षण के केवल कल्पित, बुद्धि द्वारा आरोपित आकार का ही ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं, स्वयं सत् का नहीं। इसलिए स्वलक्षण प्रत्यय की व्याख्या और

* शोध छात्र, प्राचीन इतिहास, काशी नरेश विश्वविद्यालय, ज्ञानपुर, भदोही
** शोध निर्देशक, अध्यक्ष, प्राचीन इतिहास, काशी नरेश विश्वविद्यालय, ज्ञानपुर, भदोही

परिभाषा में व्यावहारिक भाषा की दृष्टि से कठिनाई होती है। वस्तुतः बौद्धिक स्थिति में रहते हुए, बुद्धि का अतिक्रमण कर, यानि प्रत्यक्ष के विज्ञानात्मक कक्ष में मस्तिष्क को कोष्ठीकृत कर, स्वलक्षण को सांकेतित करना होता है।

स्वलक्षण किसी भी सत्ता का परमार्थसत्व है। अन्य समस्त सत् इसी से गृहीत होते हैं। कोई भी वस्तु जो किसी विज्ञान से, किसी ग्राह्य यथार्थता से सम्बद्ध नहीं है, वह या तो कल्पना मात्र है या संज्ञामात्र है या एक तात्विक वस्तु हो सकती है। सत् या यथार्थ ग्राह्य सत्ता अथवा स्वलक्षण पर्याय है। यह अवस्तु सामान्य और परिकल्पित के विरूद्ध है। सामान्य लक्षण वह सब कुछ है जो स्वलक्षण नहीं है और स्वलक्षण उन सबों का सर्वथा निराकरण है जो सामान्य लक्षण है।

सामान्यतया किसी वस्तु को सभी नाम, जाति, गुण, संज्ञा आदि से सम्बन्धित विशेषताओं द्वारा लक्षित किया जा सकता है लेकिन बौद्ध दर्शन के अनुसार ये सभी बौद्धिक विकल्पात्मक होने से सत्तात्मक नहीं, नाममात्र आरोपित हैं। जब हम किसी वस्तु को इन सभी विशेषताओं से रहित कर देखते हैं तो केवल 'वस्तुमात्र' ही शेष बचता है। यही शेष वस्तु जिसका निराकरण सम्भव नहीं है, बौद्ध दर्शन में परमार्थ सत् स्वलक्षण है। इस स्थिति में उसकी परिभाषा केवल इसी विशेषता के द्वारा की जा सकती है कि 'स्वलक्षण' वस्तुमात्र है, दूसरे शब्दों में वस्तु वस्तुमात्र है। लेकिन यह एक विश्लेषणात्मक निर्णय होगा, जो परिभाषा के औचित्य को पूरा नहीं करता। इसलिए बौद्ध दर्शन में परमार्थ सत् स्वलक्षण की परिभाषा 'अर्थक्रियाकारित्व' के रूप में की गयी है।[12] अर्थक्रियाकारित्व ही परमार्थ सत् स्वलक्षण की एकमात्र रात्तात्मक विशेषता है।[13] अर्थक्रियाकारित्व का अर्थ कार्योत्पादन सामर्थ्य शक्ति या किसी प्रयोजन को पूरा करने की क्षमता है। इसलिए स्वलक्षण अर्थक्रिया में समर्थ होने के कारण वस्तुसत् है, क्योंकि उसी से हेय–उपादेय प्रयोजन की सिद्धि होती है। प्रयोजनसिद्धि काल्पनिक विषय से नहीं हो सकती, क्योंकि वह विकल्प का विषय है। यद्यपि विकल्प का विषय भी दृश्यवत् अध्यवसित होता है, तथापि वह दृश्यसत् नहीं है, क्योंकि वह दूर एवं सन्निकट से अस्फुट और स्फुट प्रतिभास उत्पन्न नहीं करता है।[14] अर्थक्रियाकारित्व से यह भी सिद्ध होता है कि परमार्थ सत् स्वलक्षण चरमभाव स्वरूप परिणामी है, क्योंकि क्रिया, परिवर्तनशीलता और गतिशीलता का ही दूसरा नाम है। इसलिए सत्ता क्रिया है। पुनः क्रिया हर समय वर्तमान क्षण में होती है, इसलिए परमार्थ सत् स्वलक्षण क्षणिक है। यही क्षणमात्र सत्ता है, परिवर्तन है, गति है, परमार्थ है।

बौद्ध मान्यता के अनुसार मात्र व्यक्ति ही यथार्थ वस्तु है। सामान्य एक अवस्तु है, अन्वर्थ अथवा संज्ञामात्र है। अतः सामान्य केवल विकल्पात्मक वैचारिक संरचना मात्र है, केवल विशेष ही प्रदत्त है, जो क्षणिक विलक्षण स्वलक्षण है। बौद्धों का व्यक्ति या विशेष जो परमार्थ सत् स्वलक्षण है, सर्वतोव्यावृत–त्रयलोक्य व्यावृत है।[15] यह स्वलक्षण अर्थक्रिया का एक ग्राह्य क्षण मात्र है, जिसका न तो देश में विस्तार है न ही काल में स्थायित्व। यह क्षणिक है। बौद्धों के अनुसार वह विशेष जिसका आनुभविक ज्ञान होता है, वह परमार्थ सत् नहीं है।[16]

इस प्रकार व्यक्ति और सामान्य, स्वलक्षण और सामान्य लक्षण की व्याख्या एक दूसरे के अस्वीकृति के संदर्भ में की जा सकती है। इन्हें वस्तु और अवस्तु, निर्विकल्पक और सविकल्पक, समर्थ और असमर्थ, अकृत्रिम और कृत्रिम, अनारोपित और आरोपित, सर्वतो व्यावृत और अव्यावृत, देशकालानुगत और परमार्थ सत् और संवृति सत् के रूप में सहसम्बद्ध किया गया है। अतः सत्ता का अर्थ व्यक्ति या विशेष होना है। अंत में बौद्ध नैयायिक कहते हैं कि सामान्य की सत्ता आत्मनिष्ठ है। यह मानसिक संरचना मात्र है। यथार्थ केवल अत्यन्त विशेष 'स्वलक्षण' है और यही परमार्थ सत् है।

अन्त में, बौद्ध दर्शन में परमार्थ सत् तथा तत्व मीमांसा के विषय में निम्नलिखित वर्णन किया गया है–

1. परमार्थ सत् स्वलक्षण एक व्यक्ति, अत्यन्त विशेष होता है।
2. परमार्थ सत् स्वलक्षण अनभिलाप्य होता है।
3. परमार्थ सत् स्वलक्षण स्फुट प्रतिभास उत्पन्न करता है।
4. परमार्थ सत् स्वलक्षण गत्यात्मक होता है।
5. परमार्थ सत् स्वलक्षण विधि रूप होता है, जो अर्थक्रियाकारित्व के अनुसार परीक्षित किया जा सके।
6. परमार्थ सत् स्वलक्षण अपोहात्मक होता है। परमार्थ सत् स्वलक्षण त्रैलोक्य व्यावृत और सर्वतो व्यावृत होता है। इस तथ्य का मर्म स्वलक्षण का प्रत्यक्ष की निर्विकल्पक ग्राह्यता में निहित है। बौद्ध

दर्शन यह निर्धारित करता है कि, भेदाग्रह ही अलीक में परमार्थ सत् के समानता की प्रतीति का निमित्त है और अत्यन्त विलक्षण वस्तुओं में समानता की प्रतीति अन्य व्यावृति के द्वारा है।

इस प्रकार निष्कर्षात्मक रूप से हम कह सकते हैं कि, सत्ता और विकल्प के भेद में शुद्ध सत्ता का वरण और विकल्पों के अनावरण की न्यायशास्त्रीय प्रवृत्ति जो आरंभ से ही बौद्ध दर्शन में विकसित हो रही थी, वह दिङ्नाग और धर्मकीर्ति के दर्शन में पूर्णता को प्राप्त किया। अर्थक्रियाकारित्व के रूप में सत् को परिभाषित कर इसका सभी प्रकार के मौलिक कल्पनाओं से विरोध दिखाकर, स्वलक्षण, जो निषेधात्मक दृष्टि से निर्विकल्पक है और सकारात्मक दृष्टि से अर्थक्रियाकारित्व का क्षणमात्र है, को परमार्थ सत् रूपेण स्थापित किया गया है। वस्तुतः 'स्वलक्षण' की सम्पूर्ण अवधारणा सत्ता के ज्ञातानिरपेक्ष उसके परमार्थ स्वरूप का संकेत मात्र है। यह कोई आर्षज्ञान या दैवीय, प्रकाशन के द्वारा देशित नहीं, आधार पर एक तटस्थ ज्ञाता द्वारा निरपेक्ष स्वरूप का प्रतिपादन है। बल्कि शुद्ध ज्ञानमीमांसीय तर्कणाओं के आधार पर एक तटस्थ ज्ञाता द्वारा निष्पक्ष रूप से प्रत्याक्षेप ज्ञेय के ज्ञातानिरपेक्ष स्वरूप का प्रतिपादन है।

सन्दर्भ :

1. स्वलक्ष्यते अनेन इतिस्वलक्षण् और स्वस्य लक्षणं इति स्वलक्षणम्।
2. भामती, पृ. 55.
3. मो. तर्क. भा.–डॉ. सिंह कृत अग्रे. अनु. पृ. 26.
4. तदैव, परमार्थ सत्–न्या. वि., 1.14 और स्वलक्षण ही प्रत्यक्षगोचरः तदैव परमार्थ सत्– प्रा.समु. 2. 208.
5. परमो र्यो कृत्रिम अनारोपितम् रूपम्–न्या0वि0टी0, 1.14 के व्याख्यान्तर्गत।
6. स्वलक्षणम् क्षणम्–प्रमा.समु. साभार–बौद्ध धर्म एवं दर्शन, डॉ0 बी.एन. सिंह, पृ0 74.
7. यह एक ऐसा शुद्ध वर्तमानकालिक सत्ता क्षण है, जिसमें देश, काल और सत्ता की अविभाज्य एकता निहित है।
8. सौत्रान्तिक निकायों में 'नील–पीत क्षणत्वम्' की अवधारणा प्राप्त होती है। इसी आधार पर वैभाषिक और सौत्रान्तिक वाह्य प्रत्यक्षवाद और वाह्यानुमेयवाद की स्थापना करते हैं।
9. ब्रह्मविद्याभरण, 2.2.20.
10. विकल्पने अतुगतः साक्षात्कारः।–साभार बु.लौ.भा.–1, पृ. 181. टी.–4.
11. न्या.वि.टी. 1.21; प्रमा.वा., 2.224.
12. अर्थक्रिया सामर्थ्य लक्षणत्वाद् वस्तुनः। –न्या.वि., 1.15.
13. शुद्ध सत्ता मात्र परमार्थ सत् स्वलक्षण की यह परिभाषा, परिभाषा सम्बन्धी सभी दोषों से सर्वथा परे है। प्रकृतिकरण दोष से भी मुक्त है।–स्वयं की टीका।
14. धानाम्यां ज्ञानप्रतिभासं न भिन्नति। –न्या.वि.टी., 1.16 व्याख्यान्तर्गत।
15. बु.लौ.भा.–1, पृ. 181 पर उद्धृत।
16. अध्यवसीयभानम् स्वलक्षणम् न परमार्थ सत्। –न्या.वा.ता.टि. पृ. 341/26; उद्धृत बु.लौ.भा.–1, पृ0 184.

सोशल मीडिया का युवाओं के मानसिक स्वास्थ्य पर प्रभावः एक मनोवैज्ञानिक अध्ययन

सुमित सिंह*

सार

वर्तमान समय सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी का युग है, जिसमें सोशल मीडिया ने मानव जीवन के लगभग प्रत्येक क्षेत्र को प्रभावित किया है। फेसबुक, इंस्टाग्राम, एक्स (पूर्व में ट्विटर), व्हाट्सऐप, यूट्यूब तथा अन्य डिजिटल मंचों ने संचार को सरल, तीव्र और वैश्विक बना दिया है। विशेष रूप से युवा वर्ग सोशल मीडिया का सबसे बड़ा उपभोक्ता है। यह माध्यम शिक्षा, मनोरंजन, ज्ञान-विनिमय, सामाजिक संपर्क तथा व्यक्तित्व विकास के अनेक अवसर प्रदान करता है, किन्तु इसके अत्यधिक उपयोग से मानसिक स्वास्थ्य पर नकारात्मक प्रभाव भी पड़ते हैं।

मनोविज्ञान के दृष्टिकोण से देखा जाए तो सोशल मीडिया का प्रभाव व्यक्ति के संज्ञानात्मक (Cognitive), भावात्मक (Emotional) तथा व्यवहारात्मक (Behavioral) पक्षों पर स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। अत्यधिक सोशल मीडिया उपयोग से तनाव, चिंता, अवसाद, अकेलापन, आत्मसम्मान में कमी, सामाजिक तुलना तथा डिजिटल व्यसन जैसी समस्याएँ उत्पन्न हो सकती हैं। दूसरी ओर, उचित एवं संतुलित उपयोग से सामाजिक सहयोग, आत्म-अभिव्यक्ति, रचनात्मकता तथा ज्ञान-वृद्धि को बढ़ावा मिलता है।

इस शोध-पत्र का उद्देश्य सोशल मीडिया के सकारात्मक एवं नकारात्मक प्रभावों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करना, युवाओं के मानसिक स्वास्थ्य पर इसके प्रभावों को समझना तथा स्वस्थ डिजिटल जीवन के लिए आवश्यक सुझाव प्रस्तुत करना है। यह अध्ययन द्वितीयक आँकड़ों (Secondary Data) पर आधारित है, जिसमें पुस्तकों, शोध-पत्रों, पत्रिकाओं तथा विश्वसनीय ऑनलाइन स्रोतों का उपयोग किया गया है।

मुख्य शब्दः सोशल मीडिया, मानसिक स्वास्थ्य, युवा, मनोविज्ञान, तनाव, अवसाद, डिजिटल व्यसन।

भूमिका (Introduction)

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है तथा संचार उसकी मूलभूत आवश्यकता है। विज्ञान एवं तकनीकी के विकास ने संचार के स्वरूप को पूर्णतः बदल दिया है। आज सोशल मीडिया के माध्यम से कोई भी व्यक्ति कुछ ही क्षणों में विश्व के किसी भी भाग में रहने वाले व्यक्ति से संपर्क स्थापित कर सकता है। यह तकनीक आधुनिक जीवन का अभिन्न अंग बन चुकी है।

भारत विश्व के उन देशों में शामिल है जहाँ इंटरनेट एवं सोशल मीडिया उपयोगकर्ताओं की संख्या अत्यधिक है। युवाओं में सोशल मीडिया का प्रयोग सबसे अधिक देखा जाता है। विद्यार्थी शिक्षा, मनोरंजन, मित्रता, समाचार, करियर, व्यवसाय तथा व्यक्तिगत अभिव्यक्ति के लिए सोशल मीडिया का उपयोग करते हैं। कोविड-19 महामारी के बाद ऑनलाइन शिक्षा एवं डिजिटल संचार के बढ़ते प्रयोग ने सोशल मीडिया के महत्व को और बढ़ा दिया।

यद्यपि सोशल मीडिया ने ज्ञान और सूचना की पहुँच को आसान बनाया है, किन्तु इसके अत्यधिक उपयोग से मानसिक स्वास्थ्य संबंधी अनेक चुनौतियाँ भी सामने आई हैं। कई शोध बताते हैं कि लगातार स्क्रीन पर समय बिताने से व्यक्ति की नींद प्रभावित होती है, ध्यान केंद्रित करने की क्षमता घटती है तथा चिंता और अवसाद जैसी समस्याओं की संभावना बढ़ सकती है। दूसरी ओर, सीमित और उद्देश्यपूर्ण उपयोग व्यक्ति को सामाजिक सहयोग, आत्मविश्वास और रचनात्मक अवसर भी प्रदान कर सकता है।

* नेट – मनोविज्ञान

मनोविज्ञान के अनुसार व्यक्ति का व्यवहार उसके वातावरण से प्रभावित होता है। सोशल मीडिया एक ऐसा डिजिटल वातावरण है जो व्यक्ति के विचारों, भावनाओं, निर्णयों और सामाजिक व्यवहार को निरंतर प्रभावित करता है। युवा अवस्था व्यक्तित्व विकास का महत्वपूर्ण चरण होती है। इस अवस्था में व्यक्ति दूसरों की राय, सामाजिक स्वीकृति और पहचान के प्रति अधिक संवेदनशील होता है। सोशल मीडिया पर मिलने वाली प्रतिक्रियाएँ, जैसे लाइक, कमेंट और फॉलोअर्स, आत्मसम्मान एवं आत्मविश्वास को प्रभावित कर सकती हैं।

आज के समय में "डिजिटल व्यसन" (Digital Addiction) एक गंभीर मनोवैज्ञानिक समस्या बनता जा रहा है। कई युवा दिन में कई घंटे सोशल मीडिया पर व्यतीत करते हैं, जिससे उनकी पढ़ाई, पारिवारिक संबंध, सामाजिक जीवन तथा मानसिक स्वास्थ्य प्रभावित होता है। इस कारण सोशल मीडिया और मानसिक स्वास्थ्य के बीच संबंध का अध्ययन अत्यंत आवश्यक हो गया है।

अध्ययन की आवश्यकता

वर्तमान समय में सोशल मीडिया का प्रभाव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में दिखाई देता है। विशेष रूप से युवाओं का अधिकांश समय डिजिटल माध्यमों पर व्यतीत होने लगा है। इससे उनके व्यवहार, व्यक्तित्व, अध्ययन, सामाजिक संबंध तथा मानसिक स्वास्थ्य पर गहरा प्रभाव पड़ रहा है।

इस अध्ययन की आवश्यकता निम्नलिखित कारणों से है–

1. युवाओं में सोशल मीडिया उपयोग की बढ़ती प्रवृत्ति का अध्ययन करना।
2. मानसिक स्वास्थ्य पर पड़ने वाले सकारात्मक एवं नकारात्मक प्रभावों को समझना।
3. डिजिटल व्यसन के मनोवैज्ञानिक कारणों का विश्लेषण करना।
4. संतुलित सोशल मीडिया उपयोग के लिए सुझाव देना।
5. अभिभावकों, शिक्षकों एवं नीति-निर्माताओं को उपयोगी जानकारी उपलब्ध कराना।

अध्ययन के उद्देश्य

इस शोध के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं–

1. सोशल मीडिया की अवधारणा को स्पष्ट करना।
2. युवाओं के मानसिक स्वास्थ्य पर सोशल मीडिया के प्रभावों का अध्ययन करना।
3. सोशल मीडिया के सकारात्मक एवं नकारात्मक पक्षों का विश्लेषण करना।
4. सोशल मीडिया उपयोग और आत्मसम्मान, तनाव एवं अवसाद के संबंध का अध्ययन करना।
5. स्वस्थ डिजिटल व्यवहार के लिए सुझाव प्रस्तुत करना।

परिकल्पनाएँ

1. सोशल मीडिया का अत्यधिक उपयोग युवाओं के मानसिक स्वास्थ्य को नकारात्मक रूप से प्रभावित करता है।
2. संतुलित एवं उद्देश्यपूर्ण उपयोग मानसिक स्वास्थ्य पर सकारात्मक प्रभाव डालता है।
3. सोशल मीडिया उपयोग और तनाव के स्तर के बीच सकारात्मक संबंध पाया जाता है।
4. सोशल मीडिया पर सामाजिक तुलना आत्मसम्मान को प्रभावित करती है।

शोध पद्धति

यह अध्ययन **वर्णनात्मक** पर आधारित है।

अध्ययन का प्रकार

यह गुणात्मक एवं द्वितीयक आँकड़ों पर आधारित अध्ययन है।

आँकड़ों के स्रोत

- मनोविज्ञान की पुस्तकें
- राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय शोध-पत्र
- शोध पत्रिकाएँ
- विश्वविद्यालयीय शोध
- विश्वसनीय ऑनलाइन स्रोत

अध्ययन की सीमाएँ

- अध्ययन केवल द्वितीयक आँकड़ों पर आधारित है।
- प्रत्यक्ष सर्वेक्षण या प्रयोग नहीं किया गया।
- निष्कर्ष उपलब्ध साहित्य के विश्लेषण पर आधारित हैं।

सोशल मीडिया की अवधारणा

सोशल मीडिया इंटरनेट आधारित ऐसा मंच है जहाँ व्यक्ति सूचना साझा करता है, विचार व्यक्त करता है तथा अन्य लोगों के साथ संवाद स्थापित करता है। इसके प्रमुख माध्यम हैं–

- फेसबुक
- इंस्टाग्राम
- व्हाट्सऐप
- यूट्यूब
- एक्स (Twitter)
- लिंक्डइन
- टेलीग्राम

इन माध्यमों के द्वारा व्यक्ति केवल सूचना प्राप्त नहीं करता बल्कि स्वयं भी सामग्री (Content) का निर्माण करता है।

मानसिक स्वास्थ्य की अवधारणा

विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) के अनुसार मानसिक स्वास्थ्य केवल मानसिक रोगों का अभाव नहीं है, बल्कि ऐसी अवस्था है जिसमें व्यक्ति अपनी क्षमताओं को पहचानता है, जीवन की सामान्य चुनौतियों का सामना करता है, उत्पादक रूप से कार्य करता है तथा समाज में सकारात्मक योगदान देता है।

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से मानसिक स्वास्थ्य के प्रमुख घटक हैं–

- आत्मविश्वास
- आत्मसम्मान
- भावनात्मक संतुलन
- तनाव प्रबंधन
- सामाजिक समायोजन
- निर्णय क्षमता
- सकारात्मक सोच

साहित्य समीक्षा (Review of Literature)

किसी भी शोध का आधार पूर्व में किए गए अध्ययनों का विश्लेषण होता है। सोशल मीडिया एवं मानसिक स्वास्थ्य के संबंध में अनेक राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय शोध किए गए हैं। इन अध्ययनों से यह स्पष्ट

होता है कि सोशल मीडिया के प्रभाव केवल नकारात्मक ही नहीं, बल्कि सकारात्मक भी हो सकते हैं। इसका प्रभाव मुख्यतः उपयोग की अवधि, उद्देश्य, आयु, व्यक्तित्व तथा सामाजिक परिस्थितियों पर निर्भर करता है।

बॉयड (Boyd, 2014) ने अपने अध्ययन में बताया कि सोशल मीडिया युवाओं को अपनी पहचान विकसित करने, मित्रता बनाए रखने तथा सामाजिक संबंधों को मजबूत करने का अवसर देता है। इसके माध्यम से युवा अपनी भावनाओं और विचारों को स्वतंत्र रूप से व्यक्त कर सकते हैं।

क्रॉस एवं सहयोगियों (Kross et al., 2013) के अध्ययन में पाया गया कि फेसबुक का अत्यधिक उपयोग व्यक्ति की जीवन संतुष्टि को कम कर सकता है तथा अकेलेपन और नकारात्मक भावनाओं को बढ़ा सकता है।

ट्वेंगे (Twenge, 2017) ने किशोरों पर किए गए शोध में बताया कि डिजिटल उपकरणों तथा सोशल मीडिया पर अधिक समय बिताने वाले किशोरों में अवसाद, चिंता तथा आत्महत्या के विचारों की संभावना अपेक्षाकृत अधिक पाई गई।

भारतीय संदर्भ में भी अनेक शोधों से यह निष्कर्ष सामने आया है कि अत्यधिक स्क्रीन समय विद्यार्थियों की पढ़ाई, नींद, पारिवारिक संबंधों तथा मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करता है। साथ ही यह भी पाया गया कि यदि सोशल मीडिया का उपयोग शिक्षा, करियर तथा सकारात्मक संचार के लिए किया जाए तो इसके लाभ भी प्राप्त होते हैं।

उपलब्ध साहित्य के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि सोशल मीडिया स्वयं समस्या नहीं है, बल्कि उसका अनियंत्रित और असंतुलित उपयोग मानसिक स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं का प्रमुख कारण बन सकता है।

सोशल मीडिया का मनोवैज्ञानिक आधार

मनोविज्ञान के अनुसार प्रत्येक व्यवहार के पीछे कोई न कोई प्रेरणा (Motivation) होती है। सोशल मीडिया के उपयोग के पीछे भी कई मनोवैज्ञानिक कारण होते हैं–

- सामाजिक स्वीकृति (Social Acceptance)
- आत्म-अभिव्यक्ति (Self-expression)
- मनोरंजन
- जानकारी प्राप्त करना
- मित्रता स्थापित करना
- अकेलेपन से बचना
- पहचान बनाना

युवा अक्सर दूसरों से जुड़ने, अपनी उपलब्धियाँ साझा करने तथा समाज में अपनी पहचान बनाने के लिए सोशल मीडिया का उपयोग करते हैं। यदि इन आवश्यकताओं की पूर्ति संतुलित रूप से होती है तो मानसिक स्वास्थ्य अच्छा रहता है, अन्यथा असंतोष, तनाव तथा चिंता उत्पन्न हो सकती है।

सोशल मीडिया के सकारात्मक प्रभाव

1. ज्ञान एवं शिक्षा का विस्तार

सोशल मीडिया शिक्षा का प्रभावी माध्यम बन चुका है। विद्यार्थी ऑनलाइन व्याख्यान, ई-पुस्तकें, शोध सामग्री तथा शैक्षिक वीडियो आसानी से प्राप्त कर सकते हैं। यूट्यूब, टेलीग्राम तथा अन्य प्लेटफॉर्म शिक्षा को अधिक सुलभ बनाते हैं।

2. सामाजिक सहयोग

मानसिक तनाव की स्थिति में व्यक्ति अपने मित्रों एवं परिवार से ऑनलाइन संपर्क स्थापित कर सकता है। कई बार यह सामाजिक सहयोग मानसिक संतुलन बनाए रखने में सहायता करता है।

3. आत्म-अभिव्यक्ति

सोशल मीडिया व्यक्ति को अपने विचार, कला, लेखन, संगीत तथा अन्य प्रतिभाओं को प्रस्तुत करने का अवसर देता है। इससे आत्मविश्वास और रचनात्मकता का विकास होता है।

4. करियर एवं रोजगार

आज अनेक युवा सोशल मीडिया के माध्यम से रोजगार, व्यवसाय, फ्रीलांसिंग तथा डिजिटल मार्केटिंग के अवसर प्राप्त कर रहे हैं। इससे आर्थिक आत्मनिर्भरता भी बढ़ रही है।

5. मानसिक जागरूकता

वर्तमान समय में मानसिक स्वास्थ्य संबंधी जागरूकता फैलाने में सोशल मीडिया महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। कई मनोवैज्ञानिक एवं चिकित्सक लोगों को तनाव प्रबंधन, अवसाद तथा सकारात्मक जीवनशैली के बारे में जानकारी प्रदान करते हैं।

सोशल मीडिया के नकारात्मक प्रभाव

1. तनाव (Stress)

अत्यधिक सोशल मीडिया उपयोग से व्यक्ति लगातार नई सूचनाओं, संदेशों तथा प्रतिक्रियाओं के संपर्क में रहता है। इससे मानसिक थकान तथा तनाव बढ़ सकता है। जब व्यक्ति बार-बार अपने मोबाइल की जाँच करता है, तब उसका ध्यान भंग होता है और कार्यक्षमता कम हो जाती है।

2. चिंता (Anxiety)

यदि किसी पोस्ट पर अपेक्षित "लाइक" या "कमेंट" नहीं मिलते, तो कुछ युवा स्वयं को कम महत्वपूर्ण समझने लगते हैं। लगातार ऑनलाइन बने रहने की इच्छा तथा कुछ छूट जाने का डर (Fear of Missing Out - FOMO) चिंता को बढ़ाता है।

3. अवसाद (Depression)

लंबे समय तक दूसरों की सफलता, सुंदरता या विलासितापूर्ण जीवन को देखकर व्यक्ति स्वयं की तुलना करने लगता है। इससे हीन भावना, असंतोष तथा अवसाद विकसित हो सकता है।

4. आत्मसम्मान में कमी

मनोविज्ञान के अनुसार आत्मसम्मान व्यक्ति के व्यक्तित्व का महत्वपूर्ण भाग है। सोशल मीडिया पर निरंतर तुलना करने से व्यक्ति अपने वास्तविक गुणों को भूलकर केवल बाहरी उपलब्धियों पर ध्यान देने लगता है। इससे आत्मविश्वास एवं आत्मसम्मान में कमी आती है।

5. डिजिटल व्यसन (Digital Addiction)

डिजिटल व्यसन आधुनिक मनोविज्ञान की गंभीर समस्या बन चुका है। इसकी प्रमुख विशेषताएँ हैं–

- बार-बार मोबाइल देखना
- सोशल मीडिया के बिना बेचैनी महसूस होना
- पढ़ाई या काम में ध्यान न लगना
- समय का नियंत्रण खो देना
- परिवार एवं मित्रों से दूरी बढ़ना

ऐसी स्थिति में व्यक्ति वास्तविक जीवन की अपेक्षा आभासी दुनिया में अधिक समय बिताने लगता है।

6. नींद पर प्रभाव

रात में देर तक मोबाइल चलाने से नींद की गुणवत्ता प्रभावित होती है। पर्याप्त नींद न मिलने से चिड़चिड़ापन, स्मरण शक्ति में कमी, तनाव तथा मानसिक थकान बढ़ सकती है।

7. सामाजिक तुलना (Social Comparison)

मनोवैज्ञानिक लियोन फेस्टिंगर के सामाजिक तुलना सिद्धांत के अनुसार व्यक्ति स्वयं का मूल्यांकन दूसरों से तुलना करके करता है। सोशल मीडिया इस प्रवृत्ति को और अधिक बढ़ा देता है क्योंकि अधिकांश लोग वहाँ केवल अपने जीवन के सकारात्मक पक्ष प्रस्तुत करते हैं।

इस कारण कई युवाओं में यह भावना उत्पन्न हो जाती है कि उनका जीवन दूसरों की तुलना में कम सफल या कम आकर्षक है।

सोशल मीडिया और व्यक्तित्व विकास

सोशल मीडिया व्यक्तित्व विकास को सकारात्मक और नकारात्मक दोनों प्रकार से प्रभावित कर सकता है।

सकारात्मक प्रभाव

- संचार कौशल में वृद्धि
- रचनात्मकता का विकास
- आत्मविश्वास में वृद्धि
- नेतृत्व क्षमता का विकास
- नई जानकारी प्राप्त करना

नकारात्मक प्रभाव

- वास्तविक सामाजिक संबंधों में कमी
- अकेलापन
- भावनात्मक अस्थिरता
- निर्णय क्षमता में कमी
- समय प्रबंधन की समस्या

मनोवैज्ञानिक विश्लेषण

व्यवहारवादी दृष्टिकोण (Behaviorism) के अनुसार सोशल मीडिया पर मिलने वाले लाइक, कमेंट तथा शेयर सकारात्मक पुनर्बलन (Positive Reinforcement) का कार्य करते हैं। इससे व्यक्ति बार-बार उसी व्यवहार को दोहराता है।

संज्ञानात्मक मनोविज्ञान (Cognitive Psychology) के अनुसार सोशल मीडिया व्यक्ति के विचारों एवं धारणाओं को प्रभावित करता है। यदि व्यक्ति नकारात्मक सूचनाओं या तुलना में अधिक समय बिताता है, तो उसकी सोच भी नकारात्मक हो सकती है।

मानवतावादी मनोविज्ञान (Humanistic Psychology) के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति आत्म-विकास की क्षमता रखता है। यदि सोशल मीडिया का उपयोग सीखने, प्रेरणा तथा सकारात्मक संवाद के लिए किया जाए तो यह व्यक्तित्व विकास का प्रभावी माध्यम बन सकता है।

चर्चा

प्रस्तुत अध्ययन के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि सोशल मीडिया आधुनिक जीवन का एक महत्वपूर्ण अंग बन चुका है। विशेष रूप से युवा वर्ग शिक्षा, मनोरंजन, सामाजिक संपर्क, करियर निर्माण तथा आत्म-अभिव्यक्ति के लिए इसका व्यापक उपयोग कर रहा है। अध्ययन से यह भी स्पष्ट होता है कि सोशल मीडिया स्वयं न तो पूर्णतः लाभदायक है और न ही पूर्णतः हानिकारक। इसका प्रभाव मुख्य रूप से उपयोग की अवधि, उद्देश्य, उपयोगकर्ता के व्यक्तित्व तथा आत्म-नियंत्रण पर निर्भर करता है।

यदि सोशल मीडिया का उपयोग सीमित समय, सकारात्मक उद्देश्य और विवेकपूर्ण ढंग से किया जाए, तो यह ज्ञान, रचनात्मकता, सामाजिक सहयोग, व्यावसायिक अवसर तथा मानसिक जागरूकता को बढ़ावा देता है। इसके विपरीत, अत्यधिक और अनियंत्रित उपयोग व्यक्ति के मानसिक स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव डाल सकता है। विशेष रूप से सामाजिक तुलना (Social Comparison), डिजिटल व्यसन (Digital Addiction), फियर ऑफ मिसिंग आउट (FOMO), साइबर बुलिंग तथा नींद की कमी जैसी समस्याएँ युवाओं के मानसिक संतुलन को प्रभावित करती हैं।

अध्ययन से यह भी ज्ञात हुआ कि सोशल मीडिया पर दिखाई देने वाला जीवन प्रायः वास्तविक जीवन का पूर्ण चित्र नहीं होता। अधिकांश लोग अपनी उपलब्धियों और सकारात्मक पक्षों को ही साझा करते हैं। जब युवा स्वयं की तुलना ऐसे आदर्शीकृत चित्रों से करते हैं, तो उनमें हीन भावना, आत्मसम्मान में कमी, तनाव और अवसाद की संभावना बढ़ सकती है।

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से यह आवश्यक है कि युवाओं को डिजिटल साक्षरता (Digital Literacy), समय प्रबंधन तथा भावनात्मक संतुलन का प्रशिक्षण दिया जाए। परिवार, विद्यालय और समाज को मिलकर ऐसा वातावरण तैयार करना चाहिए जिससे युवा सोशल मीडिया का उपयोग संतुलित और रचनात्मक रूप में कर सकें।

निष्कर्ष

इस अध्ययन से निम्नलिखित प्रमुख निष्कर्ष प्राप्त हुए–

1. सोशल मीडिया वर्तमान समय में युवाओं के जीवन का अभिन्न अंग बन चुका है।
2. संतुलित उपयोग से शिक्षा, संचार, रचनात्मकता और व्यक्तित्व विकास को प्रोत्साहन मिलता है।
3. अत्यधिक उपयोग मानसिक तनाव, चिंता, अवसाद, अकेलेपन और आत्मसम्मान में कमी जैसी समस्याओं को बढ़ा सकता है।
4. डिजिटल व्यसन युवाओं के मानसिक स्वास्थ्य के लिए एक उभरती हुई चुनौती है।
5. सोशल मीडिया पर निरंतर सामाजिक तुलना मानसिक असंतोष का प्रमुख कारण बन सकती है।
6. उचित समय-प्रबंधन, आत्म-नियंत्रण और डिजिटल जागरूकता के माध्यम से सोशल मीडिया के नकारात्मक प्रभावों को काफी हद तक कम किया जा सकता है।
7. अभिभावकों, शिक्षकों तथा नीति-निर्माताओं को युवाओं में स्वस्थ डिजिटल आदतों को विकसित करने के लिए सक्रिय भूमिका निभानी चाहिए।

अतः यह कहा जा सकता है कि सोशल मीडिया एक शक्तिशाली साधन है, जिसका प्रभाव उसके उपयोग के तरीके पर निर्भर करता है। विवेकपूर्ण एवं संतुलित उपयोग व्यक्ति के मानसिक स्वास्थ्य और व्यक्तित्व विकास के लिए लाभदायक सिद्ध हो सकता है।

सुझाव

युवाओं के मानसिक स्वास्थ्य की सुरक्षा एवं सोशल मीडिया के संतुलित उपयोग के लिए निम्नलिखित सुझाव दिए जा सकते हैं–

1. प्रतिदिन सोशल मीडिया उपयोग का समय निर्धारित किया जाए।
2. पढ़ाई या कार्य के दौरान अनावश्यक नोटिफिकेशन बंद रखे जाएँ।
3. सोने से कम से कम एक घंटे पहले मोबाइल का उपयोग बंद किया जाए।
4. नियमित व्यायाम, योग एवं ध्यान (Meditation) को दैनिक जीवन का भाग बनाया जाए।
5. परिवार और मित्रों के साथ प्रत्यक्ष संवाद को बढ़ावा दिया जाए।
6. सोशल मीडिया पर दूसरों से अनावश्यक तुलना करने से बचा जाए।

7. केवल विश्वसनीय और सकारात्मक सामग्री का अनुसरण किया जाए।
8. यदि तनाव, चिंता या अवसाद के लक्षण लंबे समय तक बने रहें, तो मनोवैज्ञानिक या मानसिक स्वास्थ्य विशेषज्ञ से परामर्श लिया जाए।
9. विद्यालयों एवं महाविद्यालयों में डिजिटल साक्षरता तथा मानसिक स्वास्थ्य जागरूकता कार्यक्रम आयोजित किए जाएँ।
10. सरकार एवं शैक्षणिक संस्थानों द्वारा स्वस्थ डिजिटल व्यवहार को प्रोत्साहित करने वाली नीतियाँ विकसित की जाएँ।

शोध की सीमाएँ

इस अध्ययन की कुछ सीमाएँ भी हैं–

- यह अध्ययन मुख्यतः द्वितीयक आँकड़ों पर आधारित है।
- इसमें प्रत्यक्ष सर्वेक्षण या प्रयोगात्मक अध्ययन नहीं किया गया।
- अध्ययन मुख्य रूप से युवाओं तक सीमित है।
- भविष्य में विभिन्न आयु वर्गों पर तुलनात्मक अध्ययन किए जा सकते हैं।

भविष्य के लिए शोध की संभावनाएँ

भविष्य में निम्न विषयों पर विस्तृत शोध किया जा सकता है–

- किशोरों में सोशल मीडिया एवं आत्मसम्मान का संबंध।
- सोशल मीडिया और शैक्षणिक उपलब्धि।
- साइबर बुलिंग का मानसिक स्वास्थ्य पर प्रभाव।
- डिजिटल डिटॉक्स कार्यक्रमों की प्रभावशीलता।
- कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) आधारित सोशल मीडिया का मनोवैज्ञानिक प्रभाव।

संदर्भ सूची

1. American Psychiatric Association. (2022). *Diagnostic and Statistical Manual of Mental Disorders* (5th ed., text rev.). American Psychiatric Publishing.
2. Boyd, D. (2014). *It's Complicated: The Social Lives of Networked Teens*. Yale University Press.
3. Kross, E., et al. (2013). Facebook use predicts declines in subjective well-being in young adults. *PLoS ONE, 8*(8).
4. Twenge, J. M. (2017). *iGen*. Atria Books.
5. World Health Organization. (2022). *World Mental Health Report*. WHO.
6. Baron, R. A., & Branscombe, N. R. (2018). *Social Psychology*. Pearson.
7. Feldman, R. S. (2020). *Understanding Psychology*. McGraw-Hill Education.
8. Myers, D. G. (2021). *Psychology*. Worth Publishers.
9. Singh, A. K. (2018). *आधुनिक मनोविज्ञान*. मोतीलाल बनारसीदास.
10. शर्मा, आर. एन. (2019). *शैक्षिक मनोविज्ञान*. आगरा: आर. लाल बुक डिपो।